E-986

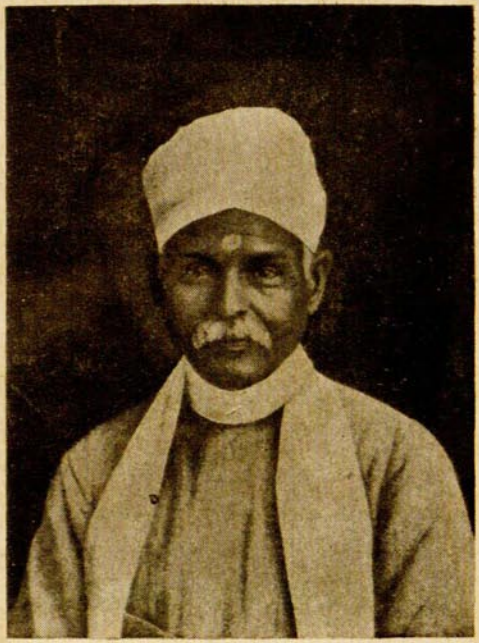

महामना मालवीयजी

हि-६४६

महामना मालवीयजी

(महामना पंडित मदनमोहनजी मालवीय का संक्षिप्त जीवन तथा कार्य)

लेखक :—
यमुना प्रसाद श्रीवास्तव, एम० ए० बी० एड्०
अध्यापक, सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, मालवीय नगर,
वाराणसी।

अशोक पुस्तक-मन्दिर
ज्ञानवापी, वाराणसी—१

दिसम्बर १९६१] [मूल्य १]

प्रकाशक :—
अशोक पुस्तक मन्दिर,
ज्ञानवापी, वाराणसी

मुद्रक :—
श्री परशुराम सिंह
अशोक आर्ट प्रेस
४६, शिवठाकुर लेन,
कलकत्ता-७

माननीय जस्टिस श्री एन० एच० भगवती,
कुलपति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कर
कमलों में मालवीय जी की जन्म-
शताब्दी के पवित्र अवसर पर
सादर समर्पित।

दिसम्बर १९६१ }

—यमुना प्रसाद श्रीवास्तव

विषय-सूची

	पृष्ठ
१—प्रारम्भिक जीवन	१ से ११
२—देश-सेवा	१२ से २६
३—धर्मोपदेश	२७ से ३९
४—राष्ट्रभाषा	४० से ५०
५—काशी हिन्दू विश्वविद्यालय	५१ से ५८

दो शब्द

मैं श्री मालवीय जी स्मारक समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, के उन सभी पदाधिकारियों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनके द्वारा आयोजित 'हिन्दी निबन्ध प्रतियोगिता' में प्रस्तुत करने के लिये मुझे महामना मालवीय जी का यह संक्षिप्त जीवन-चरित्र लिखने का अवसर प्राप्त हुआ था। यद्यपि मुझे प्रस्तुत पुस्तक पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा एक सौ रुपये का प्रथम पुरष्कार प्राप्त हो चुका है तथापि मैं अपने प्रयास को तभी पूर्णरूपेण सफल समझूंगा जब इसके द्वारा भारत के नर-नारी महामना के कुछ कीर्तियों से अवगत होकर मुझे कृतार्थ करेंगे।

मैं अपनी कृतज्ञता आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी तथा पण्डित गयाप्रसाद ज्योतिषी के प्रति प्रकट करता हूँ जिनकी रचनाओं द्वारा मुझे इस निबन्ध के लिखने में यथोचित सहायता प्राप्त हुई है।

इस वर्ष महामना जी की जन्म-शताब्दी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ही नहीं वरन् देश के कोने-कोने में मनाई जायगी। इसलिये इस निबन्ध के प्रकाशन की एक सार्थकता भी है। मैं अपने को कृत-कृत्य समझूँगा यदि इस देश के अधिक से अधिक निवासी मेरे इस तुच्छ प्रयास द्वारा महामना मालवीय जी के पुनीत जीवन, दिव्य कार्यों तथा धवल चरित्र से परिचित हो सकेंगे।

—यमुना प्रसाद श्रीवास्तव

धवल देह अरु वेश, धवल चरित कीरति धवल।
धवल किया निज देश, धवल ज्ञान विज्ञान सौं।
मद नहिं परसत जाह, मोह न मिलइ सुभाव महं।
मालवीय मन लाई, हृदय हरौ हरषत सदा।

महामना पं० मदन मोहन जी मालवीय का
१९३० में लिया गया चित्र ।

प्रारम्भिक जीवन

परहित बस जिनके मन माहीं । तिन कहँ जग कछु दुर्लभ नाहीं ॥
जिमि सरिता सागर महँ जाहीं । यद्यपि ताहि कामना नाहीं ॥
तिमि सुख सम्पति बिनहिं बुलाये । धर्मशील पहँ जाहिं सुभाये ॥
—*तुलसीदास*

महात्मा तुलसीदास के उपरोक्त कथन की सत्यता का ज्वलन्त प्रमाण हमें महान पण्डित मदन मोहन मालवीयजी के दिव्य जीवन में सर्वत्र दिखाई पड़ता है। आज मालवीयजी के नाम से भारतवर्ष का प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति परिचित है। बीसवीं शताब्दी में महामना के उज्ज्वल चरित्र से जो उत्साह, आदर्श और शिक्षा भारतवर्ष के पुरुष, स्त्री, बालक और वृद्ध को मिली है उससे देश, धर्म और हिन्दू जाति का सदा कल्याण होता रहेगा। निःसन्देह महामना को वास्तविक परमात्मा का आंशिक अवतार समझना चाहिये, जिन्होंने देश तथा काल की आवश्यकतानुसार अवतार लेकर भारत का कल्याण किया था। ऐसे महामना महानुभाव के आदर्श चरित्र का विकास जिन कठिन परिस्थितियों में हुआ था, उन सबको एक रोचक ढंग से सुन्दर, मनोहर शब्दों में सर्वसाधारण के सामने रखना

परमावश्यक है, पर साथ ही साथ एक अत्यन्त कठिन कार्य है। महामना मालवीय जी के महान चरित्र को केवल कुछ पृष्ठों में लिखना गागर में सागर को भरने का प्रयास करना है।

प्रयाग में चौक के दक्षिण की ओर एक मुहल्ला है जो अब भारतीय भवन कहलाता है। इसका प्राचीन नाम सूर्यकुण्ड था। इसी मुहल्ले में पौष कृष्ण अष्टमी, बुधवार सम्वत् १९१८ अर्थात् २५ दिसम्बर सन् १८६१ ई० को—ठीक उसी दिन जब १८६१ वर्ष पहले बैथलहम में साधु महात्मा ईसा पैदा हुये थे—पण्डित ब्रजनाथ व्यास जी के घर पराधीन जन्मभूमि का दर्द लेकर, भूखे देशवासियों की पीड़ा लेकर और धर्म का सच्चा प्रकाश लेकर सौभाग्यवती मूना देवी जी की गोद में सन्ध्या को ६ बज कर ५४ मिनट पर एक बालक उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम रखा गया था मदन मोहन। महामना की जन्म-कुण्डली से कुछ ऐसे ग्रहों का योग प्रकट होता था जिससे उनको धर्म में दृढ़ता, पराक्रम, शीलता, दृढ़ संकल्पता, आशा-मूलकता, परोपकारिता, पवित्रता तथा निर्भीकता आदि साहसमय कार्यों की पराकाष्ठा का योग था।

पण्डित ब्रजनाथ चतुर्वेदी अपने पिता के सुयोग्य पुत्र थे। अपने पिताजी से उन्होंने भव्य सुन्दर शरीर पाया था। इनकी बुद्धि विमल थी तथा वे राधाकृष्ण के अनन्य भक्त थे। पण्डित ब्रजनाथ जी ने सदाचार के साथ संस्कृत विद्या को बड़ी मिहनत और लगन से अपनाया था। सदाचार, भगवद्भक्ति और

विद्या यही उनका धन था। वे चौबीस-पच्चीस वर्ष की अवस्था में व्यास बन गये थे तथा भागवत की कथा कहनी प्रारम्भ करदी थी। इनकी देह सुन्दर तथा सुडौल थी। परमात्मा ने इन्हें मधुर कण्ठ दिया था। जब बोलते थे तो मानों मिश्री घोलते थे। एक तो मीठी बोली और फिर ब्रजभाषा—कोयल और बसन्त—बस सुनने वाले लट्टू हो जाते थे। रीवाँ, दरभंगा और काशी के महाराजाओं ने इनका बड़ा सम्मान किया। कितने ही रजवाड़े इन्हें गुरु मान चुके थे। जब वे बंशी बजा कर गाते थे तो मधु का सोता बह जाता था और श्रोतागण मन्त्रमुग्ध हो कर नाच उठते थे। उनकी कथा भावमय होती थी—कभी हँसते थे तो कभी रोते थे, कभी आवेश था तो कभी शान्ति थी। जान पड़ता था कि नाट्यशास्त्र के सारे रस पण्डित ब्रजनाथ व्यास जी के रूप में साकार होकर विराजमान थे। नये-नये दृष्टान्तों से सजा कर शान्त, गम्भीर, तन्मय भाव से जब वे भगवान की कथा-रस बांटते थे तो उसका वर्णन भला कौन कर सकता है—'गिरा अनयन, नयन बिनु बानी'।

वे मीठा बोलने के साथ साथ पूरे सन्तोषी भी थे। उन्होंने कभी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया। मृदुभाषिता ने क्रोध को और सन्तोष ने लोभ को उनसे सदा दूर रक्खा। इनका विवाह सहजादपुर में हुआ था। सौभाग्य से इनकी धर्मपत्नी श्रीमती मूना जी बड़ी सरल और कोमल हृदय वाली मिली

थीं। अड़ोस-पड़ोस की जो सेवा बन पड़े कर देना और सबसे प्रेम से बोल कर बड़ी शान्ति से सारे घर भर का काम देखना यही उनका काम था। वे किसी को दुःखी नहीं देख सकती थीं। इस कारण उनकी उदारता निस्संकोच भाव से हर घड़ी सेवा का अवसर ढूंढ़ती रहती थी। उन्होंने किसी को निराश नहीं किया। मुहल्ले भर के बच्चे उनके घर के बच्चे बन गये थे। सबको प्यार से बुलाना, बैठाना, पुचकारना, कुछ खिला-पिला देना—बस बच्चे अपनी अपनी माँ भूल गये थे। सचमुच ऐसी माँ पाने के लिये बड़ा सौभाग्य होना चाहिये। पण्डित ब्रजनाथ जी भी जो कुछ कथा में पाते थे उन्हें सौंप देते थे और सारी गृहस्थी वे ही संभालती थी। भगवान की भक्ति का प्रसाद यदि सचमुच किसी को प्रत्यक्ष देखना हो तो वह मालवीय परिवार को देखे। बड़ा भारी परिवार—पुत्र-पुत्रियां, नाती-पोते—घर में दुधारु गौंएँ—सभी प्रकार का सुख है। पण्डित ब्रजनाथ जी को छः पुत्र और दो कन्यायें हुईं। क्रम से उनके नाम ये हैं:—लक्ष्मीनारायण, सुखदेई, जयकृष्ण, सुभद्रा, मदनमोहन, श्यामसुन्दर, मनोहर और बिहारी लाल।

मदनमोहन ने पिता का अमर प्रसाद पाकर, उनकी धार्मिक छाया लेकर, उनके सम्पूर्ण गुणों की बपौती पाकर जन्म लिया था। पिता की भगवद्भक्ति का मदनमोहन पर कुछ कम प्रभाव नहीं पड़ा था। यही कारण था, कि सारा देश पण्डित ब्रजनाथ व्यास के अमर पवित्र गुणों के साक्षात् मूर्तिमान स्वरूप मदन

मोहन के जीवन काल में उनके चिरजीवन की कामना करता रहा और मरने पर उन्हें परमपिता परमात्मा का आंशिक अवतार मानने को प्रस्तुत हो रहा है। धन्य थे वे पुत्र जिन्हें पण्डित ब्रजनाथ जी जैसे पिता और श्रीमती मूना देवी जी जैसी माता मिली थीं और धन्य थे वे माता-पिता जिन्हें मदनमोहन जैसा पुत्र मिला था। मदनमोहन ने घर पर ही पढ़ना सीखा, नागरी अक्षर सीखे और फिर संस्कृत पढ़ना सीखा। अपने दादा और अपने पिता जी से नित्य सुनते सुनते बहुत से श्लोक, भजन, स्तोत्र और गीत मदनमोहन को याद हो गये थे। अपने दादा और पिता का आशिष पाकर मदन मोहन पण्डित हरदेव जी की धर्मज्ञानोंपदेश पाठशाला में पढ़ने बैठाये गये थे। वह पाठशाला अब भी भारती-भवन मुहल्ले में पूज्य मालवीय जी के मकान के दक्षिण की ओर है और पंडित हरदेव जी की पाठशाला के नाम से प्रसिद्ध है।

कुछ दिन यहाँ पढ़ने के बाद वे विद्याधर्म प्रवर्द्धिनी सभा की पाठशाला में प्रवेश कराये गये। उसके सर्वेसर्वा थे देवकी नन्दनजी। वह मदनमोहन को माघ मेले पर ले जाया करते थे और एक मोढ़े पर खड़ा करके व्याख्यान दिलाया करते थे। सात बरस का बालक सारे राष्ट्र की नौका खेने का पहला पाठ त्रिवेणी संगम पर सीखने लगा जहाँ विश्व की तीनों पवित्र धारायें आकर मिल गई हैं। नव वर्ष की अवस्था में पिताजी ने बालक को पट बना दिया। पिताजी ही प्रथम आचार्य बने, उन्होंने ही सावित्री मन्त्र दिया। कोपीन धारण

करके हाथ में पालाश-दण्ड लेकर, कन्धे पर मृगछाला डालकर हाथ में झोली लेकर मदनमोहन ने माता से जाकर कहा—"भवति! भिक्षाम् देहि!" उससमय कौन जानता था कि कोपीन उतार देने पर भी, मृगछाला और दण्ड फेंक देने पर भी, एक दिन यही बटु बहुत बड़ी झोली लेकर द्वार-द्वार, नगर-नगर सारे राष्ट्र के लिये भिक्षा मांगेगा और संसार का सबसे बड़ा भिखारी कहलायेगा। सचमुच किसे विश्वास होगा कि उस "भवति भिक्षाम् देहि" के पीछे कितने निर्धन, दीन विद्यार्थियों की विवशता से भरी हुई करुण-पुकार छिपी हुई थी। अब मदन मोहन के मन में अभिलाषा हुई कि हम भी अंगरेजी पढ़ें। पर स्कूल में फीस लगती थी। एक लम्बे परिवार में जिसमें कमानेवाला एक हो और वह भी ऐसा हो जो किसी के सामने हाथ न फैलाता हो, वहाँ स्कूल की फीस और किताबों के लिये दाम कहाँ से आवे? पहले सरस्वती जी दोनों की कुटिया में रूखी-सूखी खाकर ही प्रसन्न हो जाया करती थीं पर आजकल की सरस्वती जी बिना पैसे बात नहीं करतीं। गरीब के घर आने में उन्हें संकोच होता है। जान पड़ता है उन पर भी कुछ पश्चिम का असर हो चला है।

पर पण्डित ब्रजनाथ जी ने अपने होनहार बच्चे का दिल छोटा होने न दिया। अपना पेट काटकर भी उसे अंग्रेजी पढ़ने भेज दिया। ये पढ़ने में बहुत मन लगाते थे। गणित में ये कमजोर थे और संसार के सभी महापुरुष गणित में कमजोर होते

हैं, पर बाद को परिश्रम करके इन्होंने अपनी कमी पूरी की। जहाँ कहीं भी सेवा का काम पड़ता वहाँ वे सबसे आगे दिखाई पड़ते। मेले-तमाशे में भीड़ का प्रबन्ध करना इन्होंने उसी बालकपन में सीख लिया। इनको संगीत से बड़ा प्रेम था। यह विद्या तो इनकी खानदानी ही थी। पिताजी की बांसुरी सुनी हुई थी। मधुर स्वर बपौती में मिला ही था। इनके परिवार में शायद ही कोई ऐसा बालक हो जिसे संगीत का शौक न हो। आपने सितार बजाना सीखा और बहुत ही अच्छा सितार बजाने लगे। बिना संगीत प्रेमी हुये, मनुष्य की उदात्त वृत्तियां विकसित भी तो नहीं होतीं। सच पूछिये तो सहानुभूति, समवेदना और दूसरे की व्यथा का अनुभव उसे ही हो सकता है जिसने एक बार तन्त्री को छूआ हो। इस संगीत प्रेम के साथ ये अपने पिताजी से सूर के पद गाते सुनते थे। इन्होंने सितार के साथ बजाने के लिये सूर, मीरा तथा अन्य कवियों के चुने हुये पदों का संग्रह किया था, वे नीचे दिये जाते हैं :—

(१)

चरण कमल बन्दो हरिराई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अन्धे का सब कुछ दरसाई।
बहिरो सुनै, मूक पुनि बोले, रंक चले सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुणामय, बार बार बन्दौं तेहि पाई॥

(२)

ऊधो जो हरि हितू तुम्हारे।
तौ तुम कहियो जाइ कृपा करि ये दुख सबै हमारे।

तन तरिवर उर स्वाससपन मैं बिरह दवा अति जारे।
नहिं सिरात नहिं जात हाट है सुलगि सुलगि भई कारे।
जद्यपि प्रेम उमगि जल सींचै बरषि बरषि घन हारे।
जो सींचे एहि भाँति जतन करि तौ येते प्रतियारे।
कीर कपोत कोकिला चातक बधिक बियोग बिड़ारे।
क्यों जीवै येहि भांति सूर प्रभु ब्रज के लोग विचारे॥

(३)

ऊधो मन माने की बात।
दाख छोहारा छाड़ि अमृत फल, विष कीरो विष खात।
जो चकोर को देइ कपूर कोउ, तजि न अंगार अघात।
मधुप करत घर कोरि काठ में, बंधत कमल के पात।
ज्यो पतंग, हित जानि आपनो दीपक सों लपटात।
सूरदास जाको मन जासो, सोई ताहि सोहात।

इस प्रकार शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करता हुआ यह बालक समाज तथा देश के विस्तृत अखाड़े में कूदा। नई उमंगें, नया जोश और नई आशाओं से भरा हुआ मदन मोहन ऊपर चढ़ने लगे और इतने ऊपर तक चढ़ते गये कि उन तक पहुँचने की बात तो दूर रही, उतनी ऊंचाई को देखकर ही आंखें चुँधियाने लगती हैं।

स्कूल और कालेज

गवर्नमेंट हाई स्कूल इलाहाबाद से सन् १८७६ ई० से अठारह वर्ष की अवस्था में मदन मोहन ने एंट्रेंस परीक्षा पास कर ली। तत्पश्चात् इन्हें कालेज में पढ़ने का मन हुआ, पर दरिद्रता मुँह बाये सामने खड़ी थी, किन्तु इनके पिता ने हिम्मत न हारी। मदन मोहन ने म्योर सेंट्रल कालेज में नाम लिखा लिया। इसके प्रिन्सिपल एक बड़े विद्वान श्री हैरिसन साहेब थे। कालेज में पहुँचने पर मदन मोहन के गुणों का तो विकास हुआ ही, साथ ही उनका कार्यक्षेत्र भी बढ़ गया। प्रिन्सिपल हैरिसन पर इनके देशानुराग, पवित्र जीवन, धीरता और निर्भयता का बड़ा प्रभाव पड़ा और वे इन्हें बहुत मानने लगे।

मदन मोहन ने कालेज में एक डिबेटिंग सोसाइटी—'वाद-विवाद समाज' स्थापित किया जिसमें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक विषयों पर वाद-विवाद हुआ करते थे और इनके मित्रगण भाषण दिया करते थे। सभी लोगों में तो इनके समान लगन थी नहीं, पर ये सभी में उत्साह भरा करते थे। इनके कालेज का वेश भी वही था जो उनके अन्तिम दिन तक रहा। वही साफ़ा, वही दुपट्टा, वही अचकन और वही पाजामा।

सन् १८८१ ई० में आपने म्योर सेंट्रल कालेज से ही एफ० ए० पास किया। सन् १८८३ ई० में आप बी० ए० की परीक्षा देने आगरा गये। कुछ ऐसा संयोग हुआ कि आप उस साल

साल असफल रहे। बहुधन्धी आदमियों के साथ यह भी तो एक मुसीबत होती है कि वह यदि दूसरों की भलाई सोचने में लग जाता है तो उसे फिर अपनी उन्नति की चिन्ता नहीं रहती, उसे दूसरों की चिन्ता से ही फुरसत नहीं मिलती। पर अगले वर्ष सन् १८८४ ई० में मदन मोहन ने कलकत्ते से बी० ए० पास कर लिया और बी० ए० पास करने के साथ ही स्वतन्त्र मदन मोहन को नून, तेल लकड़ी की फिक्र करने का आदेश मिला। उनकी बड़ी इच्छा थी कि एम० ए० करें, पर घर की दशा ठीक नहीं थी। अब अधिक दिनों तक इन्हें खर्च नहीं मिल सकता था और इसीलिए न चाहते हुये भी इन्हें अपने विद्या-मन्दिर से विदा लेनी पड़ी। कालेज के दिन सचमुच इनके मस्ती के दिन थे। न ऊधो का लेना न माधो का देना। जो मौज में आया वह निश्चिन्त होकर किया, कभी किसी के आगे भय से सिर नहीं झुकाया। बड़ों के सामने और श्रद्धा से जरूर झुके, पर जो इनसे कड़ा पड़ा उसके आगे ताल ठोंक कर खड़े भी हो गये। इस प्रकार विद्या प्राप्त करके, बड़े-बड़े महापुरुषों का आशीर्वाद पाकर, अब गुणों से अलंकृत होकर यह स्नातक विद्या-मन्दिर को नमस्कार करके सारे राष्ट्र, संपूर्ण जाति और विस्तृत समाज की सेवा करने की दीक्षा लेकर मैदान में आ कूदा।

अब वे अपने पूज्य पिता जी और माता जी के बुढ़ापे की लाठी बनने में लगे। उनके गुण किसी से छिपे न थे। इधर कालेज से छूटे उधर गवर्नमेंट हाई स्कूल में एक अध्यापक की

मांग हुई। मदन मोहन बी० ए० अपने पुराने स्कूल में पचास रुपये महीने पर अध्यापक हो गये। अब इनके परिवार के दिन फिरे। इन्होंने "मल्लई" नामकी संस्कृत करके उसे "मालवीय" बना दिया और अब वे मालवीय कहलाने लगे। हम भी अब आगे इन्हें मालवीय जी कहकर पुकारेंगे। अब ये पंडित मदन मोहन मालवीय बी० ए० हो गये, इनके मालवीय नाम का प्रचार इतना हुआ कि इनके परिवार और कुटुम्ब वालों ने तो इस नाम को अपनाया ही साथ ही अन्य श्री गौड़ ब्राह्मण भी अपने को मालवीय लिखने लगे। मालवीय जी स्कूल में पढ़ाने लगे। लोगों का ऐसा विश्वास है कि विद्यादान सब दानों से बढ़कर है और अध्यापन के समान कोई दूसरा भला काम नहीं है पर साथ ही यह आवश्यक है कि अध्यापक में कुछ गुण भी होने चाहिये; वे हैं सच्चरित्रता, मृदुभाषिता और अपने विषय का ज्ञान। जिस अध्यापक में ये तीन गुण नहीं वह अध्यापक कैसा ? अपने वेश से, अपनी बाणी से और अपने व्यवहार से वे आदर्श अध्यापक रहे हैं।

देश सेवा

मालवीय जी कोरे अध्यापक नहीं थे। पढ़ाने के बाद जो कुछ समय मिलता उसे समाज-सेवा और जन-सेवा में लगाते थे। वह समय कुछ दूसरा ही था। सरकारी नौकरी करते हुये भी वे कांग्रेस में शामिल हुए। सन् १८८५ ई० में भारतीय राष्ट्रीय महासभा' की स्थापना हुई थी। मालवीय जी अपने निर्भीक गुरु पंडित आदित्य राम भट्टाचार्य के साथ सन् १८८६ ई० में होने वाली कलकत्ते की दूसरी कांग्रेस की बैठक में पहुँचे। वहीं से मालवीय जी की जीवन-धारा बदल गई। किस प्रकार इन्होंने स्कूल छोड़ा, सम्पादक बने और वकालत की, यह भी एक ऐतिहासिक घटना है। सन् १८८७ ई० में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की नींव पड़ी। यह युक्तप्रान्त का सबसे पहला विश्वविद्यालय था। इसलिये चारों ओर से विद्यार्थियों के झुंड के झुंड आने लगे। विद्यार्थियों का यह कष्ट मालवीय जी ने समझ लिया क्योंकि वे कष्ट का अनुभव करते थे और दूसरे की व्यवस्था का अन्दाज़ा लगा सकते थे। उन्होंने हिंदू विद्यार्थियों के लिये एक आदर्श छात्रावास बनवाने का निश्चय किया। उस समय म्योर सेन्ट्रल कालेज ही प्रथम श्रेणी का विद्यालय था। सभी लोग अपने लड़कों को वहीं भेजना चाहते थे और सभी के मन में छात्रालय का अभाव खटकता

था। फिर इस उत्साह के पीछे गवर्नर साहेब की प्रेरणा पाकर बहुत लोगों ने अपनी थैलियाँ खोल दीं। जिसके मन में दया, उदारता, करुणा, परोपकार आदि सद्भावों का सर्वथा अभाव होता है वे भी अफसरों के एक इशारे पर सर्वगुण सम्पन्न मनुष्य बन जाते हैं। युक्त प्रान्त भर में घूम-घूम कर उन्होंने रुपया एकत्र किया। सन् १९०३ ई० में युक्त प्रान्त के उदारचित्त गवर्नर सर एंटनी मैकडोलन के नाम पर दो सौ पचास विद्यार्थियों के रहने योग्य एक विशाल भवन बन गया जिसका नाम पड़ा "मैकडोनल युनिवर्सिटी हिन्दू बोर्डिंग हाउस"। मैकडोनल साहब का जो यश फैला वह तो था ही, बहुत दिनों तक वह छात्रालय "मालवीय जी का बोर्डिंग हाउस" कहलाता रहा। इस बोर्डिंग हाउस के निर्माणार्थ मालवीय जी को कठिन परिश्रम करना पड़ा था।

मनुष्य के जीवन में कब क्या परिवर्तन हो सकता है यह कोई नहीं जान सकता। कालाकांकर के स्वर्गीय राजारामपाल सिंह ने मालवीय जी को साठ रुपये की नौकरी छोड़कर 'हिन्दुस्तान' नामक दैनिक पत्र के सम्पादन का कार्य करने को सलाह दी। मालवीय जी ने सन् १८८७ ई० के जुलाई मास में न चाहते हुए भी स्कूल से पद त्याग कर दिया और प्रयाग छोड़कर वहाँ से तीस मील दूर कालाकांकर में रहकर हिन्दी के सर्व प्रथम दैनिक "हिन्दुस्तान" का संपादन प्रारम्भ कर दिया। जो स्कूल में तीस बत्तीस विद्यार्थियों की कक्षा पढ़ाता था अब

वह बहुत बड़ी जनसंख्या की कक्षा को पढ़ाने-सिखाने वाला संपादक बन गया। सभी विषयों पर इनके संपादकीय लेख निकलते थे, सभी में एक असर होता था, जोर होता था और आकर्षण होता था। कभी कभी सामाजिक, धार्मिक या राजनीतिक समस्या पर गहरी चोट भी कर जाते थे, पर वह चोट ऐसी होती थी कि जिसे पढ़कर चोट खाने वाला भी एक बार फड़क उठता था और 'वाह वाह' करने लगता था। अढ़ाई वरस तक मालवीय जी ने बड़ी शान से संपादकत्व किया और बड़ा नाम कमाया।

अचानक सन् १९०७ ई० में 'अभ्युदय' का जन्म हुआ। प्रसिद्ध विद्वान और लेखक पंडित बालकृष्ण भट्ट जी ने उसका नाम करण किया। पैदा होते ही यह बालक 'अभ्युदय' मालवीय जी को सौंप दिया गया। 'अभ्युदय' ने देश और समाज दोनों की नींद खोलने का काम भी अपने सिर ले लिया। आखिर 'अभ्युदय' ही तो ठहरा। मालवीय जी दो वर्ष बाद प्रान्तीय कौन्सिल के सदस्य हो गये और 'अभ्युदय' का भार श्री पुरुषोत्तम दास टंडन जी के योग्य हाथों में सौंप दिया।

भारत में मुगलों के किलों पर विदेशियों की पताका फहराने पर भी मुसलमानी छाप हिन्दुस्तान पर बनी रही। मुसलमानों की बात तो जाने दीजिये। हमारे ब्राह्मण और क्षत्रियों के बच्चों का विद्यारम्भ 'अलिफ, बे, पे' से होता था; क्योंकि हमारी

बोल-चाल की भाषा को लोग भाषा कहकर दुहराया करते थे और आज की 'नागरी' उस समय 'गँवारी' भाषा समझी जाती थी। फारसी उसका गला दबाये बैठी थी। फारसी राजा की मुँह चढ़ी थी, किसके दो सिर हुये कि उसके विरुद्ध मुँह खोले। पर नागरी का यह अपमान कुछ लोग न सह सके। राजा शिव प्रसाद ने 'बनारसी अखबार' में बेचारी नागरी की ओर से बड़ी बकालत की। उर्दू लिपि से भारत के लोगों को कितनी परेशानी होती थी, कितना कष्ट होता था अब क्या कहें। सन् १८९३ ई० में बाबू श्याम सुन्दर दास, पंडित राम नारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमार सिंह के उद्योग से काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई। सभा के दो उद्देश्य हुये; नागरी अक्षरों का प्रचार और हिन्दी साहित्य की समृद्धि। बाबू हरिश्चन्द्र के मूल मंत्र...

'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल॥

और पण्डित प्रताप नारायण मिश्र के 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्द' का राग जोरों से गाया जाने लगा।

मालवीय जी नागरी प्रचार आन्दोलन के मुखिया बने। नागरी के सबसे बड़े शत्रु सर सैयद अहमद कब्र में गहरी नींद ले रहे थे। मालवीय जी ने वकालत करते हुये भी अपने मित्र पण्डित श्रीकृष्ण जोशी के साथ मिलकर घोर परिश्रम किया। अपने पास के रुपये खर्च करके कोर्ट लिपि का इतिहास, प्राचीन

अधिकारियों की सम्मतियाँ एकत्र करके एक बड़ा सुन्दर लेख लिखा जो "कोर्ट करेक्टर एण्ड प्राइमरी एजुकेशन इन नार्थ-वेस्टर्न प्राविन्सेज" कहलाता है। यह अभ्यर्थना लेख लेकर २ मार्च सन् १८९२ ई० को अयोध्या नरेश महाराजा प्रताप नारायण सिंह, माज के राजा रामप्रसाद सिंह, आवागढ़ के राजा बलवन्त सिंह, डाक्टर सुन्दर लाल और मालवीय जी आदि का एक दल दिन को १२ बजे गवर्नमेंट हाउस प्रयाग में छोटे लाट सर एंटोनी मैकडोनल से मिला। मालवीय जी की मेहनत सफल हो गई। उनकी सब बातें मान ली गईं। इस आन्दोलन के समय मुसलमानों में बड़ी खलबली मची, बहुत सी सभायें हुईं, सारे प्रान्त ने मिलकर अपने विजय की माला धन्यवाद के रूप में एंटोनी मैकडोनल के गले में डाल दी। बाबू हरिश्चन्द्र का चलाया हुआ आन्दोलन मालवीय जी ने सफल बना दिया। हिन्दी का राज्य-तिलक मालवीय जी के हाथों बदा था।

इस नई विजय ने नागरी प्रचारिणी सभा को उत्साहित कर दिया। १ मई सन् १८१० ई० को बैठक में सभा ने 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' करने का निश्चय किया जहाँ सब लोग मिलकर अपनी उन्तति के उपाय सोचें। इस कार्य के लिये एक समिति बनाई गई और शीघ्र ही सम्मेलन का शोर हो गया। हिन्दी-संसार के सामने हिन्दी के परम सेवक एकही महापुरुष थे, वही सफेद पगड़ी वाले, वही इस सम्मेलन के सभापति चुने

गये। हिन्दी-संसार ने अपने कर्णधार मालवीय जी का जो सम्मान उस अवसर पर किया उसका वर्णन मनुष्य की लेखनी के सामर्थ्य के बाहर है। जिस समय मालवीय जी ने हिन्दी की उन्नति का यत्न करना आरम्भ किया था उन दिनों हिन्दी के जानने वाले बहुत थोड़े थे। मालवीय जी उन दिनों हिन्दी की उन्नति के सम्बन्ध में हिन्दी में बहुतेरी वक्तृतायें दिया करते थे। मालवीय जी ने हिन्दी को कभी नहीं बिसारा, इसकी उन्नति का जैसा उद्योग आप पहले करते थे वैसा ही जीवन-पर्यन्त करते रहे। हिन्दी की जो उन्नति दिखाई देती है, उसमें मालवीय जी का उद्योग मुख्य कहना चाहिए। आपही के यत्न से हिन्दी को अदालतों में जगह मिली।

मालवीय जी के जीवन का एक-एक अध्याय एक-एक महा-भारत है। सत्य की विजय के लिये उन्होंने जो-जो लड़ाइयाँ लड़ी हैं और स्वार्थ त्याग, सेवा और सचाई के साथ काम किये हैं, वह किसी से छिपे नहीं हैं। 'अदालत की लिपि और प्रारम्भिक शिक्षा' पर जो उनका लेख है वह मानो हिन्दी बनाम उर्दू के मुकदमे का सदा के लिये फैसला है। उसके विषय में कहा जाता है कि जो इसको पढ़ लेगा वह हिन्दी का पक्षपाती ही नहीं बल्कि उसका प्रचारक भी बन जायगा। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में एम० ए० तक हिन्दी साहित्य का अध्यापन होता है। अब इन्टरमिडिएट कक्षाओं में भी सभी विषय हिन्दी में पढ़ाये जाते हैं। यह जानकर किसे सुख न

होगा कि हिन्दी के परम सेवी बाबू श्याम सुन्दर दास, अद्वितीय विद्वान पण्डित रामचन्द्र शुक्ल तथा कवि-सम्राट् पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय जी, प्रसिद्ध टीकाकार स्वर्गीय लाला भगवान दीन जी आदि हिन्दी के आचार्य सब काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग द्वारा मालवीयजी की संरक्षता में हिन्दी की सेवा कर चुके हैं।

हिन्दू महासभा

सन् १९०५ ई० का वङ्ग-भङ्ग वर्तमान हिन्दू संगठन का प्रारम्भ समझना चाहिये। लार्ड कर्जन ने जो लात लगाई थी उससे बंगाल के तो दो टुकड़े हुये ही साथ ही हिन्दुओं की भी सारी आशाएँ टुकड़े-टुकड़े हो गईं। सन् १९०५ में राष्ट्रीय महासभा के साथ-साथ सर गणेशनारायण चन्दावरकर के सभापतित्व में सोशल कान्फरेन्स हुई और बरार के श्रीयुक्त वी० एन० महाजन के सभापतित्व में टाउनहाल में हिन्दुओं की बड़ी सभा हुई। हिन्दूसभा की नीति वही थी जो लोकमान्य तिलक ने कहा था कि,—"सामाजिक सुधार किसी भी समाज में उसके भीतर से ही विकसित होने चाहिए, न कि बाहर से थोपे जाँय। यदि ऐसा न हो तो समाज में एकता नहीं हो सकती।"

सन् १९०६ ई० में प्रयाग के कुम्भ के अवसर पर मालवीय जी ने सनातन धर्म का विराट् अधिवेशन कराया जिसमें उन्होंने सनातन धर्म संग्रह, नाम का एक बृहत् ग्रन्थ तैयार करा कर महासभा में उपस्थित किया और उसी सम्मेलन में हिन्दू जाति तथा सनातन धर्म की रक्षा के लिये तथा देश की अविद्या दूर करने के लिये, हिन्दू विश्वविद्यालय, स्थापित करने का प्रस्ताव महासभा में स्वीकृत हो गया। उस सम्मेलन में ब्रह्मचर्याश्रम खोलने का भी प्रस्ताव पास हुआ था। कई वर्ष बाद

तक भी उस महासभा के बड़े बड़े अधिवेशन मालवीय जी ने कराये और दूर-दूर से बड़े-बड़े विद्वान्, पंडित, धनीमानी राजे-महाराजे उन सम्मेलनों में आते रहे।

सन् १६२१ ई० में जब एक ओर गांधी की आंधी में भारत देश उड़ा जा रहा था, उस समय भी मालवीयजी बड़ी शान्ति से सनातन धर्म की वाटिका में फूल लगा रहे थे। सनातन धर्म सभा इन्हीं तूफानी दिनों में बनी और काम करने लगी। तब से मालवीय जी की सनातन धर्म सभा अलग काम करती रही है। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसकी प्रधान शाखा पंजाब सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा ने जो पंजाब में शंख फूंका है उसकी गूंज पंजाब के बाहर भी पहुँच गई है। श्री तीर्थराज प्रयाग में सन् १६२८ ई० की तारीख १८से २४ तक, अखिल भारतवर्षीय सनातन धर्म महासभा का अधिवेशन मालवीय जी के सभापतित्व में हुआ। इसमें भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों के अनेक हिन्दू राज्यों के प्रसिद्ध शास्त्र जानने वाले पंडित आये और प्रत्येक प्रस्ताव पर अच्छी तरह से विचार हुआ। २७ जनवरी सन् १६२२ ई० को वसन्त पंचमी के दिन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में मालवीय जी ने अखिल, भारतवर्षीय सनातन धर्म महासमा की नींव डाली। मालवीय जी इसके अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित रहे। सनातन धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिये काशी से, सनातन धर्म नाम का साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होने लगा और लाहौर से, 'विश्व बन्धु' निकला।

१ अगस्त सन् १६३३ ई० को महात्मा गांधी ने हरिजन आन्दोलन चलाया, जिसका मुख्य उदेश्य था—हरिजनों के लिये सार्वजनिक स्थानों का प्रयोग कराना और मन्दिरों में उनका प्रवेश कराना। इसके लिये महात्मा गांधी चाहते थे कि एक विधान बन जाय कि हरिजन लोगों के लिये मन्दिर खुल जांय। महात्मा गांधी ने इस कार्य के लिये सारे भारत का दौरा किया। उन्हें स्थान-स्थान पर इस कार्य के लिये धन भी मिला और उसका सबसे बड़ा परिणाम यह निकला कि कितने ही सार्वजनिक मन्दिर हरिजनों के लिये खुल गये, कितने कुओं से उन्हें पानी निकालने की सुविधा हो गई, हरिजन पाठशालाएँ खुल गईं और सार्वजनिक स्कूलों में उनके पढ़ने की व्यवस्था हो गई।

गांधी जी की सब बातें तो मालवीय जी मानते थे पर वे यह नहीं चाहते थे कि शूद्रों को मन्दिरों में प्रवेश करने का अधिकार सरकारी कानून द्वारा मिले। १ अगस्त सन् १६३४ ई० को लोकमान्य तिलक की पुण्य तिथि के दिन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भी गांधी जी का भाषण हुआ और उसमें भी उन्होंने अपना मत प्रकट किया। इसके पश्चात् पूज्य मालवीय जी ने भाषण दिया·····

देवियो और सज्जनो!

मैं बहुत दिन से इस प्रयत्न में हूँ कि निष्पक्ष होकर विद्वान लोग यह निर्णय करें कि शास्त्र क्या कहता है। मुझे खेद है

कि अब तक ऐसा न हो सका। किन्तु मुझे आशा है कि यह निर्णय शीघ्र ही होगा और विद्वन्मन्डली राग-द्वेष छोड़ कर जो बतावे और निर्णय करे उसे सबको मान लेना चाहिये। तभी सबका भ्रम मिट जायगा। मुझे गांधी जी के सन्देश के विषय में कहने के पूर्व कुछ याद आया वही मैं कहना चाहता हूँ। अस्पृश्यता और मन्दिर प्रवेश बिल के विषय में मेरा अपने भाई गांधी जी से कुछ मतभेद है। मैं उनकी बहुत-सी बातें मान लेता हूँ और वे भी मेरी बातें मानते हैं और मुझे आशा है कि मैं धीरे धीरे उन्हें मना भी लूंगा। मेरी राय में ऐसा बिल असेम्बली द्वारा नहीं पास होना चाहिये। गांधी जी की राय है कि वह बिल हिन्दुओं की बहुसंख्या की राय से पास हो, दूसरी जाति के लोगों की राय से न बने। इस बारे में मैं कल गांधी जी से विचार करूँगा।"

"मन्दिर के विषय में आप जानते हैं कि हमारे यहाँ कोई विष्णु का मन्दिर है, कोई शिव का और कोई काली का। फिर किसके मत से मन्दिर-प्रवेश का निर्णय हो। इसके लिए तो शास्त्र के अनुसार ही निर्णय होना चाहिये। गांधी जी की भी राय है कि सनातनियों को चोट न पहुँचे। जबसे उन्होंने यह प्रयत्न आरम्भ किया तब से बहुत उन्नति हुई है। अस्पृश्यता भी बहुत मिटी है। लोगों के विचारों में भी बहुत परिवर्तन हुआ है। मतभेद तो भाई-भाई में होता है। मेरा और गांधी जी का सम्बन्ध बड़ा घना है। मतभेद प्रकाशन से परस्पर वैर

नहीं होता। अपना अपना मत रखना तो स्वभाव है। जो न्याय की बात हो, धर्म की बात हो, और देश जाति के मंगल के लिये हो वही करना चाहिये। आपलोग स्मरण रखिये कि महात्मा गांधी का हृदय सनातन धर्म के भीतर बैठा है और वे इसे बहुत चाहते हैं। अछूत लोगों को हिन्दू जाति से बाहर निकालने का ईसाइयों ने प्रयत्न किया, मुसलमानों ने प्रयत्न किया और कितने ही अछूत भाइयों को मुसमान और ईसाई बना भी लिया। जो गौ के रक्षक थे, गौ को माता मानते थे, मुँह से राम राम, घर पर सत्यनारायण की कथा करते थे, ऐसे सनातन धर्म के मानने वाले चमार, भंगी को ईसाइयों ने अपने दल में बुलाया और मुसलमानों ने अपने, किन्तु इन्होंने अनेकों कष्ट सह कर भी गंगा और गऊ को, राम और कृष्ण को न छोड़ा। मेरा सिर उनके सामने झुक जाता है। उन्हीं को लाभ पहुँचाने के लिए ही गांधी जी ने सिर उठाया है। मैं सनातनधर्मी के नाते चाहता हूं कि जो लाभ मुसलमान और ईसाइयों को मिलता हो वही लाभ डोम और भंगी को भी मिले। हमारे सनातन धर्म की महिमा है कि मनुष्य चाहे किसी भी जाति में रहे, किन्तु यदि धर्म से चले तो उसका उद्धार हो जाता है। मैं धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन के अनुसार कहता हूँ कि इनको भी देव-दर्शन का लाभ मिलना चाहिये। यही अभिलाषा गांधीजी की भी होगी। स्कन्दपुराण में भी इसका प्रमाण है कि यदि चांडाल सदाचारी हो तो वह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान मान

पाने के योग्य हो जाता है। यदि ऐसा हो सकता है तो फिर हम अपने अछूत भाइयों को सदाचारी क्यों न बनावें। हम उसको सदाचारी बना कर दिखादें कि जो भाई छोटे से छोटा हो उसे भी हिन्दू धर्म ऊँचा उठा सकता है।"

"आज चार-पाँच करोड़ हिन्दू अछूत कहलाते हैं। इनमें वास्तव में अछूत वे ही हैं जो मैले काम करने वाले हैं। वे मानव जाति की सेवा करते हैं जो कोई कर नहीं सकता। यदि वे एक दिन भी अपना काम बन्द करदें तो हमारी क्या दशा होगी, विचार करलो। भगवान ने कहा है "स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः, संसिद्धिं लभते नरः।" अपने-अपने काम में लगे हुये लोग मेरा पद पा सकते हैं। ये भंगी, चमार भाई सब अपना-अपना काम करें फिर स्नान करके फिर सूर्यनारायण को अर्घ्य दें, मंत्र जपें तो बोलो इनका मंगल होगा कि नहीं ? अवश्य अवश्य। देह धोकर यदि हमारा भाई चांडाल और हमारी बहन चांडालिनी यदि मन्त्र जपे, राम का नाम ले, कथा सुने, व्रत करे, तो धर्म की उन्नति हुई की नहीं। हमें इन अछूतों को जल देना है, रहने का स्थान देना है और इन्हें शिक्षा देनी है। मैं तो चाहता हूं कि उनके चार करोड़ घरों में मूर्तियाँ रखी हों और भगवान का भजन हो, तभी तो मंगल होगा। महात्मा जी ने बारह महीने से जो काम उठाया था वह परसों तक इस विश्वनाथ जी की नगरी में समाप्त हो जायगा। भगवान उन्हें दीर्घायु करें। आपकी तपस्या और परिश्रम के लिए धन्यवाद है। भगवान विश्वनाथ आपको दीर्घजीवी करें।"

इसके बाद तो बड़े-बड़े विद्वानों ने भी मंत्र दीक्षा देनी शुरू की जिनमें महामहोपाध्याय पंडित प्रमथनाथ तर्कभूषण और पंडित यज्ञनारायण उपाध्याय जी का नाम उल्लेखनीय है। सन् १९३६ ई० की शिवरात्रि का महोत्सव तो सबसे भव्य निकला। काशी में हाथियों पर वेद भगवान और छवों दर्शनों के स्वरूप छः विद्वानों का जलूस था। बड़े-बड़े पंडित शिव महिम्न स्तोत्र का पाठ कर रहे थे। उनके पीछे अपार जन-संख्या, हरिजनों के अखाड़े, गाने-बजाने वालों की गाड़ियाँ एक अपूर्व समारोह था, वर्णन नहीं किया जा सकता। दशाश्वमेध घाट पर जलूस पहुँचा, वहाँ सभा हुई। बीमार होने पर भी मालवीय जी वहाँ आये और उपदेश दिये। फिर अगले दिन उन्होंने मंत्र दीक्षा दी। इस मन्त्र दीक्षा का सबसे बड़ा प्रभाव तो यह हुआ कि काशी के सारे हरिजन यह समझने लगे कि हम हिन्दू हैं, हमें भी राम नाम जपने का अधिकार है।

हरिजनों के उद्धार के लिये मालवीय जी ने इतना ही नहीं किया बल्कि कई बार हरिजनों के मुहल्ले देखने के लिये गये, उन्हें सफाई का उपदेश दिया और उनके मकान बनाने के लिये उद्योग किया। मालवीय जी के इस काम ने काशी के कुछ पंडितों को नाराज भी कर दिया। कुछ लोग तो मालवीय जी को गालियाँ देने लगे। पर हम पूछते हैं कि क्या वे लोग सच्चे हृदय से मालवीय जी के विशाल हृदय को जरा भी पहचान पाये ? इस बात को हम दावे के साथ कह सकते हैं कि जैसा

सादा और परमपवित्र जीवन मालवीय जी का था उतना पवित्र जीवन शायद ही काशी के किसी कोने में मिल सके। पारस कभी लोहा नहीं बनता पर वह लोहे को सोना बना देता है। इस बात को सभी जानते हैं, कि गंगा जी की पवित्र धारा में सारा संसार आकर डुबकी लगा लेता है और सारा मल भी उसमें डाल देता है, पर गंगा जी वही जगत्रय पावनी बनी रहती हैं और भगवान विश्वनाथ जी नित्य उन्हीं के जल से स्नान करने को उत्सुक रहते हैं।

मालवीय जी का गोरक्षा आन्दोलन से बड़ा सम्बन्ध रहा है। राष्ट्रीय महासभा के जन्म के बाद ही उसी के साथ प्रति वर्ष गोरक्षा सम्मेलन भी होने लगा और मालवीय जी उसमें भाग लेने लगे। सन् १९२२ ई० में मालवीय जी की अध्यक्षता में सनातन धर्म महा सम्मेलन हुआ। उसमें गोरक्षा के सम्बन्ध में बड़े महत्वपूर्ण प्रस्ताव हुये। ये केवल प्रस्ताव मात्र नहीं हैं बल्कि गोरक्षा की पूरी कार्य प्रणाली ही है। गोभक्त मालवीय जी स्वयं चमड़े का जूता नहीं पहनते थे, सैकड़ों, हजारों गूँगी माताओं के आशीर्वाद से ही आयु पाते चले गये। पर खेद है कि मालवीय जी वह दिन नहीं देख सके जब भारत में गो-वध बन्द हो गया और वे स्वतंत्रता पूर्वक फिर पहले की तरह विचरने लगीं।

धर्मोपदेश

पूज्य मालवीय जी के धर्म संबंधी विचारों का उल्लेख किया जा चुका है अतः उनकी पुनरावृत्ति करना आवश्यक नहीं जान पड़ता। यहां हम उनके कुछ धर्म-संबंधी व्याख्यानों का उल्लेख करना ही पर्याप्त समझते हैं।

गीता-प्रवचन

रविवार ता० २२ जुलाई सन् १९३५ ई० को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में गीता प्रवचन करते हुये पूज्य मालवीय जी ने कहा—"मेरा विश्वास है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कार्यक्रम में साप्ताहिक गीता-प्रवचन का प्रबन्ध अन्य विषयों के पठन-पाठन से कम गौरव का नहीं है, बल्कि सबसे अधिक गौरव का है; यह हमारे कल्याण का साधन है जो विद्यार्थी और अध्यापक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से संबद्ध हों उनके लिये यह आवश्यक है कि वे इसमें सम्मिलित होकर इसका पुण्य-फल पावें।"

"इस विश्वविद्यालय की यही विशेषता है कि यहाँ दूसरे विश्वविद्यालयों की अपेक्षा धर्म का विचार अधिक किया जाता है, दूसरे विश्वविद्यालयों में जो विषय पढ़ाये जाते हैं, उनका भी पठन-पाठन यहाँ होता है किन्तु धर्म की ओर उनका ध्यान नहीं। यह विशेषता सिर्फ इस विश्वविद्यालय में है, हमारे

पूर्वज ऋषि-महार्षियों ने अमूल्य निधि हमें सौंप दी है। उसके द्वारा अपना जीवन हम उज्जवल बना सकते हैं। उनकी सम्पत्ति से हम इस लोक में आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। उनकी सम्पत्ति से आपलोग सांसारिक काम करते हैं। नित्य करो, किन्तु प्रत्येक सप्ताह में डेढ़ घंटा धर्म के लिये छोड़ दो। मैं यही गुरु दक्षिणा मांगता हूँ! इसके बदले में मुझसे सर्वस्व ले लो। जैसे कोई वैश्वदेव को बलि देता है, प्यासे को पानी देता है, उसी तरह मुझे डेढ घंटा दे दो। किसी तरह डेढ घंटा निकाल दो और उस श्रद्धापूर्ण अवसर का अनन्त लाभ उठा लो। प्रेम से इस शुभ अवसर का लाभ उठावो, जिससे आजीवन आनन्द प्राप्त करते रहो।"

"हम नियम से नित्य भोजन करते हैं, दो तीन बार भोजन का ध्यान रखते हैं। इसी तरह हमें उचित है कि धर्म का ध्यान रखें। हिन्दू विश्वविद्यालय का विधान है कि यहाँ धार्मिक शिक्षा से छात्र लाभ उठावें। वे भय से नहीं बल्कि प्रेम से धर्म-कार्य करें। हिन्दू विश्वविद्यालय माता है, इस माता को डेढ़ घण्टा भेंट कर दो और इस संस्था के धार्मिक उत्सवों से और गीता-प्रवचन से शिक्षा लो और देख लो कि इससे जीवन में कितना परिवर्तन हो गया। केवल इस विद्यालय में विद्या ही पढ़ना नहीं है। इसीके साथ-साथ चरित्र बनाना है। ज्ञान और चरित्र दोनों का मेलकर देने से संसार में मान होगा तथा गौरव प्राप्त होगा।"

"प्रह्लाद ने अपने साथी बालकों को बचपन में ही धर्म-पालन की शिक्षा दी थी। इसका पालन जवानी में नहीं बल्कि वृद्ध होने पर पालन कर लेंगे ऐसा विचार त्याग कर कौमार अवस्था में ही धार्मिक शिक्षा की नींव पर जीवन की भीति खड़ी कर दी। "कौमारे आचरेत धर्मम्" धर्म-भावना आजीवन की बना लो। मनुष्य जीवन अन्य जीवों के जीवन से विशेषता रखता है। दूसरे प्राणी, पशु, पक्षी, हाथी, घोड़ा, कुत्ते, आदि इन्द्रियों का सुख पाते हैं। उनमें और मनुष्य में सब गुण सब समान होते हैं। वे सभी हम लोगों की तरह भोजन प्रेमी हैं, वे सोते हैं, आराम करते हैं, किन्तु उनमें विवेक बुद्धि नहीं है। मछली मछली को खाती है। एक पशु दूसरे पशु का शिकार करता है। उन प्राणियों में विचार नहीं है।"

"देखा जाता है कि अब भी चोरी कम होती है, पाप कम होता है, हजारों मकान खुला रहता है। हजारों झोपड़ियाँ हैं जहाँ धर्म के काम, न्याय, सत्य, दयाभाव और शान्ति की माला पाई जाती है, बुराई कम और भलाई अधिक होती है। पाप थोड़ा और पुण्य अधिक पाया जाता है। दुर्गुणों की अपेक्षा शुभ गुणों की गणना अधिक मिलती है। संसार भर के मानव समुदाय में देखा जाय तो न्याय, शान्ति, भरोसा तथा विश्वास अधिक मात्रा में मिलेंगे। किसान का कितना बड़ा खेत लगा रहता है, उसमें से बहुत कम चोरी होती है। गाँव का मेहतर यदि सत्य बोलता है तो उसका आदर होता है

और यदि कोई पण्डित है पर झूठ बोलता है तो उसकी निन्दा होती है। घरों में स्त्रियाँ अकेली रहती हैं, उनके साथ सब न्याय करते हैं। मनुष्यों में आहार, निद्रा आदि सब प्राणियों की तरह होते हैं, किन्तु धर्म की विशेषता मनुष्य में अधिक है। मनुष्य में विवेक है जो उसे उच्च बना देता है।"

"थोड़े ही व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें देखा जाता है कि अधर्म से सांसारिक सुख पा रहे हैं, परन्तु उनका परिणाम अच्छा नहीं होता। उन्हें अधर्म से शान्ति नही मिलती। उनकी आत्मा टूट जाती है। वे पाप का बुरा फल अवश्य पाते हैं।"

"हिन्दू विश्वविद्यालय में शरीर शिक्षा और धर्म शिक्षा अनिवार्य है। इन दोनों का मेल गंगा-यमुना की तरह होना जरूरी है। ब्रह्मचर्य का पालन कर शरीर दृढ़ बनाओ। चरित्र रक्षा करो और पर स्त्री पर कभी कुदृष्टि न डालो।"

'परनारी पैनी छुरी, ताहि न दीजै दीठ।'

'मातृवत् पर दारेषु'

ब्रह्मचर्य स्थितो धर्मः स चापि नियतस्त्वपि।
तेनाहं निजितः पार्थ रणोक्ति निनहतस्त्वया॥

अर्थात् हे अर्जुन ब्रह्मचर्य के कारण ही तुमने मुझे हराया। ऐसे अर्जुन को भगवान ने गीता सुनाई। संसार में श्रीकृष्ण के समान कोई भी पुरुष नहीं है। उनके वर्णन के लिये बहुत विद्या और बुद्धि चाहिये।

"संसार में जितने नगर और गाँव है वहाँ प्रति सप्ताह सब लोगों को मिलकर गीता का पाठ करना चाहिये। मैं समझता हूँ कि आपलोग इसमें अवश्य सहयोग देंगे। इस गीता प्रचार की भावना का मूल हिन्दू विश्वविद्यालय है। यहाँ अनेक साधु, महात्मा और विद्वान रहते हैं। यहाँ देश भर के विद्यार्थी पढ़ने के लिये आते हैं। इनका कर्तव्य है कि ये लोग गीता का अध्ययन करके देश भर में उसका प्रचार करें। उसका एक सरल उपाय यही है कि प्रति रविवार को जो समय निश्चित है उस समय यहाँ आकर अध्ययन करें या सुनें।"

हमें मालवीय जी के उपरोक्त व्याख्यान से स्पष्ट विदित हो जाता है कि वे गीता के बड़े प्रेमी थे तथा इसके प्रचार के लिये सदा उपदेश दिया करते थे। यों तो काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय अनेक विश्वविद्यालयों से कई बातों में भिन्न है पर हिन्दू धर्म का प्रचार करना इसके उद्देश्यों में से एक महान उद्देश्य है। मालवीय जी के इस अमर कीर्ति में अभी भी गीता प्रचार उसी भांति से हो रहा है, जिस प्रकार आरम्भ में होता रहा था।

इसके उपरान्त मालवीय जी के उस व्याख्यान का कुछ अंश यहां पर उल्लेख किया जाता है जिसे मालवीय जी ने ४ सितम्बर सन् १९३५ ई० को शिवाजी हाल में विश्वविद्यालय के अध्यापकों और छात्रों के सम्मुख ईश्वर-वन्दना करने के अनन्तर दिया था।

परमात्मा की स्तुति और विद्यार्थियों के कर्त्तव्य

"आपलोग जानते हो मैंने स्तुति में क्या कहा है। सबसे पहला कर्त्तव्य हमारा यह है कि हम परमात्मा की स्तुति करें, उनका गुणगान करें, जो विश्वम्भर हैं, सृष्टि रचना करने वाले हैं। हमारा ज्ञान इसीलिये है कि हम परमात्मा को समझें। हमारे प्राचीन धर्म-ग्रन्थ वेद, उपनिषद् उसी परम शक्ति का गुणगान करते हैं। ज्योतिष शास्त्र में उसकी विराट् रचना का वर्णन है। आकाश में अनेक तारागण उसी की विभूति हैं। उसी की ज्योति से यह सब रचना हो रही है। केवल आकाश की विभूतियाँ नहीं वरन् पृथ्वी मण्डल पर भिन्न-भिन्न प्रकार के मनुष्य, जीव-जन्तु सब उसीके भिन्न-भिन्न आकार हैं। ये सब रूप उसीके बनाये हैं। पृथ्वी मण्डल के किसी भी भाग पर चले जाइए, एक ढाँचे के मनुष्य मिलेंगे। सबकी शरीर रचना एक-सी है। सब की रचना, जो गर्भ में होती है ईश्वर ही करता है। गौ, सिंह, मयूर आदि का कैसा-कैसा विचित्र रूप-रंग बनाया है जो समझ में नहीं आता कि कैसा किया। वह छिपा हुआ सब कुछ करता रहता है, भिन्न-भिन्न प्रकार के पेड़-पौधे, फूल-फल आदि उसीकी रचना का चमत्कार हैं। इनकी बनावट मनुष्य नहीं कर सकता।

उस परमात्मा ने मानव जाति को कैसा मन दिया है जो क्या-क्या सोचा करता है। मन कल्पना जगत् में अनेक दृश्य देखा करता है। मन की भिन्न-भिन्न भावनाएँ क्या-क्या

नहीं दिखातीं। कब छोटेपन में पढ़ा था, कब सुना था, पर अभी तक याद है। शरीर में धीरे-धीरे परिवर्तन होता रहता है और मन भीतर सब कुछ करता रहता है। उसकी रचना देख मन प्रसन्न हो जाता है। यह चैतन्य शक्ति हृदय में विराजमान है और भीतर ही वह अपना प्रभाव दिखाती हुई सांसारिक कामों के लिये प्रेरित करती रहती है। उसकी आज्ञा होती है और हम कार्य में लग जाते हैं। वह सच्चिदानन्द सर्वव्यापक होते हुये एक-एक जीव में विराजमान है। एक-एक जीव का चमत्कार दिखा रहा है। उसकी लीला समझ में नहीं आती।

जब कोई हमारी सहायता कर देता है तो हम उसके आभार को मानते, उसके कृतज्ञ होते और धन्यवाद देते हैं। तब जिस प्रभु ने हमारे जीवन के लिये सब कुछ दिया है, सुन्दर शरीर, दिव्य रूप दिया, उसका उपकार मानना चाहिये या नहीं उसका कृतज्ञ होना चाहिये या नहीं? जो हमारा जन्मदाता, पालन करनेवाला और हमारी रक्षा करनेवाला है, उसके नियमों का पालन करना चाहिये या नहीं? जब उस परमात्मा के भिन्न-भिन्न रूप हैं भिन्न-भिन्न आकार और चमत्कार हैं तब हम उसे जानने का प्रयत्न क्यों नहीं करते! जो व्यक्ति नाट्यशाला में भिन्न-भिन्न रूप बनाकर आता है और अपनी लीलाएं दिखाता है, उसको भूलकर, उसके एक रूप पर मुग्ध होना और दूसरे पर घृणा करना कहाँ तक अच्छा है। इसी तरह हम अपनी दृष्टि

किसी बहन पर खराब विचार से डालते हैं तो हम अपने आपको कलुषित करते हैं और पूज्य भाव से देखते हैं तो हमारे हृदय में शान्ति, पवित्रता और वासना रहित स्नेह-भावना पैदा हो जाती है। मन को हम अपने आप अपना शत्रु या मित्र बना लेते हैं। हम विचार नहीं करते कि यह बहन हमारी है। यह परमात्मा की एक बिभूति है। इसलिये जैसा चाहते हो वैसा बर्ताव करो। यदि पवित्र विचार और शुभ भावना से दृष्टि डालेंगे तो हमारा परम लाभ होगा। हम दूसरों से जैसा चाहते हैं पहले उनके प्रति तद्वत् बर्ताव करें तब फल स्वयं दीखने लगता है।

मानव शरीर अनेक जन्म के पुण्यों से प्राप्त होता है। जो शरीर देवों को दुर्लभ है उसे व्यर्थ नष्ट कर देने में हमारी ही भूल है। हम अपने कर्त्तव्य को भूला दें, उसको स्मरण न करें, उसके बनाये नियमों का पालन न करें, तब हम दुःखी न हों तो कौन होगा। पंच तत्व का यह सुन्दर शरीर है उसी के प्रभाव से यह दीप्यमान हो रहा है। उसीके सम्बन्ध से सब से सम्बन्धित है। उसके कारण ही एक-एक छोटे-छोटे शरीर रूपी ब्रह्माण्ड का चमत्कार होता रहता है। भीतर ही भीतर पावर हाउस काम करता रहता है और सब काम होते रहते हैं। वही स्टोर है जिसमें पदार्थों का 'रस एकत्र होता रहता है। 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी,' उसकी कृपा को सब चाहते हैं। जब ज्योति निकल जाती है तो शरीर शीघ्र नष्ट कर दिया जाता है, उसे फेंक देते

हैं। कोई देखना भी नहीं चाहता। क्या विचित्र परिवर्तन हो जाता है। माता, स्त्री सब उस शरीर से मोह त्याग देते हैं।

दुनिया भर में भिन्न-भिन्न धर्म और सम्प्रदाय हैं। सब के उच्च और शुभ नियम मानव मात्र को मान्य है चाहे वे हमारे देश के हों या अन्य देश के, चाहें वे काले हों या नहीं वे सब उस शक्ति की आज्ञा का उलंघन नहीं कर सकते, उन्हें मानना ही पड़ता है। इसाई, मुसलमान, बौद्ध, जैन सब उसके नियमों के अनुकूल चलते हैं वह अनादि सनातन पुराण पुरुष सब सृष्टि को चलाता रहता है। उसी विश्वम्भर विश्वनाथ की कृपा से हम लोग इस भूमि में उसका गुणगान कर रहे हैं। उसकी कृपा से विश्वविद्यालय का प्रादुर्भाव हुआ है। वही अपना स्वरूप बढ़ा रहा है। हम सब मिलकर इस पुण्य कार्य में विद्यादायिनी माता की सेवा में लग जावें। माता की कीर्ति उज्ज्वल करें। विश्व को दिखादें कि यह हमारी जननी है, यही सरस्वती अमरावती है। यहाँ से आदर्श मनुष्य बनकर संसार को दिखादें कि हम विश्वविद्यालय के छात्र हैं, हमारी माता चाहे दीन हो या कैसी ही हो, पर वह हमारी ही माता है। यह माता पूज्य है। हम माता से ऐसी शिक्षा लेवें, ऐसे उपदेश सुनें जिससे सुपुत्र होने का फल दिखा दें। कृष्ण और सुदामा साथ-साथ एक गुरुकुल में पढ़े थे। धनी और गरीब दोनों साथ-साथ रहते थे, वैसे ही हम रहें। माता भेद भाव नहीं जानती। उसके लिये उच्च नीच दोनों बराबर हैं। उसके दोनों पुत्र समान

हैं। बड़े पुत्र का कर्त्तव्य है कि छोटे को योग्य बना ले। भूले-भटकों को सहारा दे। उसे सदाचारी तथा धार्मिक बनाकर योग्य भाई कर ले। उसे परम पुरुष का अनन्य भक्त और जननी का सच्चा लाल बनाले, जिससे स्वच्छन्द पवित्र जीवन बनाकर लोक कल्याण कर सके।

उपदेश पंचामृत

अपनी पचहत्तरवीं वर्ष गांठ के अवसर पर पूज्य मालवीय जी ने जो व्याख्यान दिया था उसका कुछ अंश यहां पर प्रकाशित कर देने से उनके हृदय की भावनाओं को पाठक भली भांति समझ लेंगे।

"हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने भाव और विचार मातृ-भाषा में प्रगट करें। पहले हमारा जन्म होता है और माता की शिक्षा मिलती है। माता की बोली का हम अनुकरण करते हैं, अतः मातृभाषा का गौरव रखना पहला कर्त्तव्य है। फिर अंग्रेजी भाषा में देश, काल तथा पात्र के अनुसार बोलने का अभ्यास करें।

आज मैं आप लोगों को पंचामृत पान कराना चाहता हूं। पंचामृत में दूध, दही, घी, मधु और मिश्री रहती है। मैंने माता का दूध पिया, फिर गो माता का दूध पिया जिससे मेरा शरीर बना। माता ने ही शक्ति दी जिससे मैं बोल रहा हूं। माता ने ही आधि भौतिक आधि दैविक तथा आध्यात्मिक बल दिया है। माता की कृपा से ही शरीर बल बढ़ा, तब बुद्धि बल पा सका।

शुद्ध पवित्र भोजन, शुद्ध वस्तु सेवन से शरीर, धन, संपत्ति, विद्या, पांडित्य और यश प्राप्त हुआ। पवित्र व्यवहार और सदाचार ही शरीर की परीक्षा है। इसके द्वारा मनुष्य पचहत्तर वर्ष से ऊपर सौ वर्ष तक ही नहीं, वरन् इससे भी अधिक जीने की शक्ति रखता है।

हम नित्य प्रातः काल, मध्यकाल और सन्ध्याकाल की संध्या में सूर्य भगवान से स्तुति करते हैं कि हम सौ वर्ष तक सुनें, बोलें और दीन न हों। हम में शक्ति हो, सुख हो, परमात्मा का स्मरण रहे। इसाई धर्म वाले ईश्वर से मांगते हैं कि हमें नित्य भोजन मिले। उन्हें रोटी ही बहुत है। उनका आदर्श सिफ लोक सुख, व्यक्तिगत, शारीरिक सुख तक सीमित है। परन्तु हम परमात्मा से इस लोक के सुख के साथ परमानन्द की प्रार्थना करते हैं। आज हम इस जीवन से अच्छा दिव्य जीवन चाहते हैं। जब तक हमारा यह भौतिक शरीर है तब तक दीन नहों; तगड़े रहें। इसका तात्पर्य यह है कि हममें शक्ति रहे, हमारा जीवन उज्ज्वल हो। हम नारायण का स्मरण करते हैं, जिन माता पिता ने जन्म दिया है उनका स्मरण करते हैं तथा उनकी सेवा करने की इच्छा रखते हैं। गुरु ने ज्ञान दिया है। उस गुरु को न भूलें; क्योंकि गुरु ने ऐसी बुद्धि का विकास किया है, जो बारह से सोलह वर्ष की अवस्था में ही तेजस्वी दीखने लगते हैं।

पंचामृत में केवल पांच चीजें ही नहीं ली गईं, किन्तु छः चीजें भी ली गई हैं; जैसे, 'ऊं नमः शिवाय,' पंचाक्षर मंत्र कहलाता

है। यद्यपि इसमें छः अक्षर हैं। प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह परमात्मा की स्तुति करे। जिस प्रभु ने जन्म दिया है उसका स्मरण करे। एक परमात्मा द्वारा शरीर मिला है, उसी से ज्ञान प्राप्त होता है। इसी कारण सन्ध्या में गायत्री मंत्र का जप करते हैं। गायत्री सब वेदों की माता है। गायत्री मंत्र में सविता रूपी परमात्मा का ध्यान करते हैं जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करने वाला है।

जैसे माता अपने सन्तान की देख-रेख करती है, वैसे ही परमात्मा भक्त की रक्षा करता है। उस भगवान की सत्ता बुद्ध ने भी मानी है और उसे पाने के लिये नियम बताए हैं। सदाचार, यम, नियम द्वारा हृदय को शुद्ध करने का आदेश दिया है। सच बोले, हृदय पवित्र करे तब ज्ञान-चक्षु से परमात्मा का दर्शन हो। जो काम करे वह परमात्मा कृष्ण भगवान को अर्पण कर दे। ईश्वर को पवित्र भाव, पवित्र विचार अर्पण किये जाते हैं। झूठे व्यवहार परमात्मा को अच्छे नहीं लगते। ईश्वर सत्य का प्रेमी है। सब धर्मों से हिन्दू धर्म में एक विशेषता यह है कि वह ब्रह्मचर्य का महत्व बताता है। ब्रह्मचर्य जीवन है, ब्रह्मचर्य व्रत पालन कर पच्चीस वर्ष तक विद्या प्राप्त करे। सन्ध्या, नित्य-कर्म और ईश्वर प्रार्थना कर शरीर और आत्मा को पुष्ट करे। पच्चीस से पचास तक गृहस्थ बने, कुल मर्यादा का पालन करे, माता पिता की सेवा करे, अपनी पत्नी के सिवाय अन्य स्त्री पर मातृ भाव रखे। सन्तान पैदा करे, सामाजिक जीवन बितावे,

अतिथि सत्कार, श्राद्ध, तर्पण, कुटुम्ब पालन करे, पचास से पचहत्तर तक वानप्रस्थ रहे। गृहस्थी का भार सन्तान को दे और उनको शिक्षा देकर उज्ज्वल जीवन करे। परमात्मा की ओर लक्ष्य बढ़ावे। पचहत्तर वर्ष के उपरान्त संन्यासी हो। लोक-सुख से विमुख हो। परमात्मा का चिन्तन और ध्यान करे।

यदि पाप किया है तो प्रायश्चित कर ले। आगे फिर पाप न करे। सबेरे और शाम को सन्ध्या कर ईश्वर से प्रार्थना करले। जैसे स्नान से शरीर शुद्ध होता है वैसे ही भजन से हृदय। सबसे पहले धर्म-भार और परमात्मा का स्मरण, दूसरा काम माता पिता और गुरु की सेवा और तब तीसरा काम प्राणी मात्र का लाभ, चौथा देश-सेवा और तब जगत की सेवा-भार ले।

सत्येन, ब्रह्मचर्येण व्यायामेनार्थ विद्यया।

देश भक्तयात्म त्यागेन सम्मानहिः सदाभव॥

सत्य बोले, ब्रह्मचर्य व्रत पालन करे, व्यायाम करे, विद्या पढ़े, देश-सेवा करे और लोक में सम्मान प्राप्त करे। यह अन्तिम उपदेश हर एक छात्र को हमेशा स्मरण रखना चाहिये और इसके अनुसार आजीवन आचरण करना प्रत्येक व्यक्त का धर्म है।

—

राष्ट्र-भाषा

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।"

के सिद्धान्त पर भारत के कोने-कोने में जागृत हुई। देश की दशा ऐसी गिरी हुई थी कि ब्राह्मण और क्षत्रियों के बच्चों का विद्यारम्भ अलिफ, बे, पे, से होता रहा क्योंकि हमारी बोलचाल की भाषा को लोग 'भाखा' कहकर दुरदुराया करते थे और आज की 'नागरी' उस समय 'गँवारी' समझी जाती थी। फारसी उसका गला दबाये बैठी थी। अतः नागरी का यह अपमान कुछ लोग न सह सके। राजा शिव प्रसाद ने 'बनारसी अखबार' में बेचारी नागरी की ओर से बड़ी वकालत की।

मालवीय जी के जन्म के साथ-साथ आगरा से राजा लक्ष्मण सिंह का 'प्रजा हितैषी' भी पैदा हुआ। बाबू हरिश्चन्द्र वर्तमान हिन्दी गद्य के पिता कहलाते हैं। उन्होंने अनेक मौलिक पुस्तकें लिखीं। अनेक पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया। सच पूछिये तो बेचारी हिन्दी को सिंहासन पर हाथ पकड़ कर बैठाने का श्रेय बाबू हरिश्चन्द्र को ही था। पंडित प्रताप नारायण मिश्र के 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्द' का राग जोरों से गाया जाने लगा। उधर मेरठ में पंडित गौरी दत्त जी ने भी देवनागरी के प्रचार का बीड़ा उठाया और अपना सर्वस्व इसी कार्य में

लगाकर वे तन, मन, धन से इस काम में जुट गये। 'जै राम जी की' और 'प्रणाम, नमस्कार' की जगह उन्होंने 'जै नागरी की' कहना शुरू किया। उन्होंने सन् १८६४ ई० में दफ्तरों में नागरी लिपि जारी करने के लिये एक अभ्यर्थना पत्र भेजा, किन्तु उसको रद्दी की टोकरी में चिर विश्राम दे दिया गया।

युक्त प्रान्त के कुछ दिन अच्छे थे और हिन्दी का भी भाग्य अच्छा था कि सन् १८६४ ई० में इस प्रान्त के छोटे लाट सर ऐटोनी मैकडोनल काशी पधारे। नागरी प्रचारिणी सभा ने उनको एक आवेदन पत्र देकर यह दिखलाया कि नागरी की अवहेलना करने से जनता को बड़ी कठिनाइयाँ होती हैं और शिक्षा का प्रचार भी रुक रहा है। लाट साहब ने इस पर विचार करने का वचन दिया।

मालवीय जी नागरी प्रचारणी के मुखिया बने। नागरी के सबसे बड़े शत्रु सर सैयद अहमद समाधि में गहरी नींद ले रहे थे, पर मुसलमानों के मुखिया मोहसुनुल मुल्क ने नागरी के विरुद्ध घोर आन्दोलन शुरू कर दिया। जान पड़ा कि नागरी यों ही पड़ी रह जायगी। लार्ड कर्जन की सरकार भी उनकी ओर झुकी जा रही थी, पर मालवीय जी से लोहा लेना जरा टेढ़ी खीर थी। दिन-रात एक करके अपनी वकालत के सुनहले दिनों में धुन के साथ मालवीय जी ने गहरी छानवीन के साथ नागरी के पक्ष में प्रमाण और आंकड़े इकट्ठे किये। सैकड़ों जगह डिपुटेशन भेजे गये और हिन्दी भाषा और नागरी लिपि की

सुन्दरता और उपयोगिता दिखलाई गई। मालवीय जी ने वकालत करते हुये अपने मित्र पंडित श्री कृष्ण जोशी के साथ मिलकर घोर परिश्रम किया। अपने पास से रुपये खर्च करके कोर्ट लिपि का इतिहास, प्राचीन अधिकारियों की सम्मतियां एकत्र करके एक बड़ा सुन्दर लेख लिखा जो 'कोर्ट कैरेक्टर एंड प्राइमरी एजुकेशन इन नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज' कहलाता है। यह अभ्यर्थना लेख लेकर २ मार्च सन् १८९३ ई० को अयोध्या नरेश, महाराज प्रताप नारायण सिंह, मांडा के राजा राम प्रसाद सिंह, आवागढ़ के राजा बलवन्त सिंह, डाक्टर सुन्दर-लाल, और मालवीय जी आदि का एक दल दिन के बारह बजे गवर्नमेंट हाउस प्रयाग में छोटे लाट सर एंटोनी मैकडोलन से मिला। मालवी जी की मिहनत सफल हो गई। उनकी सब बातें मान ली गईं। इस आन्दोलन के समय मुसलमानों में बड़ी खलबली मची, बहुत-सी सभायें हुईं। मालवीय जी उन दिनों उनके वक्तव्यों को देखने के लिये नित्य संध्या को 'पायोनियर' टटोलते रहते, पर जैसा कि 'पायोनियर' की नीति है उसने इस विषय में चुप्पी साध ली।

सारे प्रान्त ने मिलकर अपने विजय की माला, धन्यवाद के रूप में मैकडोनल के गले में डाल दी। बबुआ हरिश्चन्द्र का चलाया हुआ आन्दोलन मालवीय जी ने सफल बना दिया। हिन्दी का राज्य तिलक मालवीय जी के हाथों बदा था।

इस नई विजय ने नागरी प्रचारिणी सभा को उत्साहित कर दिया। १ मई सन् १९१० ई० की बैठक में सभा ने हिन्दी

साहित्य सम्मेलन करने का निश्चय किया जहाँ सब लोग मिल-कर अपने साहित्य की उन्नति के उपाय सोचें। इस कार्य के लिये एक समिति बनाई गयी और शीघ्र ही सम्मेलन का शोर हो गया। समय और सभापति के लिये सम्मतियाँ मांगी गईं। हिन्दी-संसार के सामने हिन्दी के परम सेवक एकही महा-पुरुष थे—वही सफेद पगड़ी वाले, वही सभापति चुने गये। निदान सोमवार, १० अक्टूबर, सन् १९१० ई० को दिन के साढ़े ग्यारह बजे नागरी प्रचारिणी सभा काशी के हाते में एक बड़े मंडप के नीचे सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। हिन्दी संसार ने अपने कर्णधार मालवीय जी का उस अवसर पर जो सम्मान किया उसका वर्णन मनुष्य की लेखनी के सामर्थ्य से बाहर है। उनके सभापति पद के प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुये पंडित श्यामबिहारी मिश्र ने जो कुछ कहा था वह कह देना हम आवश्यक समझते हैं; मालवीय जी ने हिन्दी के लिये क्या किया उसका एक थोड़ा सा दिग्दर्शन भी हो जायगा — "जिस समय मालवीय जी ने हिन्दी की उन्नति का यत्न करना आरम्भ किया था उन दिनों हिन्दी के जानने वाले बहुत थोड़े थे। उन दिनों हिन्दी की उन्नति का यत्न करने में हिन्दी सेवियों को अगणित असुविधाओं का सामना करना पड़ता था। मालवीय जी उन दिनों हिन्दी की उन्नति के सम्बन्ध में हिन्दी में बहुतेरी वक्तृताएँ दिया करते थे। मालवीय जी ने हिन्दी को कभी नहीं विसारा, इसकी उन्नति का जैसा उद्योग आप पहले करते थे वैसा ही जीवन पर्यन्त करेंगे।"

मालवीय जी पुनः बम्बई में ता० १६ अप्रैल सन् १६१६ ई० को नवम् हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति हुये थे। यहाँ उनके भाषण का कुछ अंश दिया जाता है। जिससे हिन्दी के प्रति उनका विचार स्पष्ट हो जाय। "बहनो और भाइयो! मैं नहीं जानता कि किन शब्दों में मैं आपको धन्यवाद दूँ। जिस प्रेम के साथ आप लोगों ने मुझे इस सम्मेलन का सभापति बनाया है उसके लिये मैं आपका अत्यन्त कृतकृत्य हूँ। यह नवम् सम्मेलन है। इसके पहले काशी के प्रथम सम्मेलन में आप लोगों ने मुझे सभापति बनाया था। वही एकबार सभापति होना बहुत था, तथापि आप लोगों ने फिर दुबारा भी मुझे यह गौरव दिया, इसके लिये मैं आपको बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ।"

"हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अर्थ सभी लोग समझ सकते हैं। जो लोग पहले से उस सम्मेलन को देखते आये हैं वे इसके उद्देश्यों से भली-भाँति परिचित हैं। तथापि आज बम्बई में इसका अधिवेशन हो रहा है। अतएव इसके उद्देशों के विषय में यहाँ कुछ बतलाना उचित प्रतीत होता है। इसके उद्देश्य ये हैं। "सम्मेलनके उद्देश्य पढ़ सुनाये।"

इन सब उद्देशों का तत्व यह है कि हिन्दी की उन्नति करनी चाहिये। देवनागरी लिपि में लिखी हुई देश भाषा को राष्ट्र भाषा बनाना है। यह उसका निचोड़ है। जहाँ हिन्दी अधिक बोली जाती है वहाँ उसकी उन्नति करना है और

अन्य प्रान्तों में जहाँ के लोग उसे थोड़ा बहुत समझते हैं वहाँ उसे राष्ट्र भाषा बनाना है। इस बार का सम्मेलन बम्बई के समान शोभावती और विभवती नगरी में हो रहा है। यह इसके लिये सौभाग्य की बात है। हमें दो बातों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। एक तो हिन्दी भाषा की उन्नति की जाय और दूसरा इसी भाषा के द्वारा उच्च शिक्षा का प्रचार किया जाय। सभी प्रान्तीय भाषाओं की उन्नति हो रही है। सभी प्रान्तों के निवासी अपनी-अपनी भाषा में उच्च शिक्षा देने-दिलाने का प्रबन्ध कर रहे हैं। ऐसा ही करना उचित है। इनके साथ हमारी सहानुभूति होनी चाहिये। संवत् ७०० से हिन्दी भाषा का पता चलता है। पुष्य कवि बहुत पुराना हो गया है। खुमान रासो भी पुराना ग्रन्थ है। चन्द कवि का रासो देखिये। उसमें पुरानी हिन्दी का नमूना मिलता है। कबीर दास पन्द्रहवीं सदी में हुये। उन्होंने अपने दोहों में वेदान्त के कैसे ऊँचे भावों को प्रवाहित किया है। उनके विचारों का प्रवाह गंगा की धारा की भाँति पवित्र और शीतल है, जो सारे देश को पुनीत बना रहा है। कैसा सुबोध और सरस उपदेश उनके दोहरों में पाया जाता है। गुरु नानक देव जी कहते हैं...

"जोगी रे जिन जागना, अब जागन की बार।
फेरि कि जागो नानक, जब सोए पायँ पसार।"

भाइयो अभी चैतन्य हो जाओ, अभी जागने का समय है। सूरदास, तुलसीदास आदि सभी हिन्दी के ग्रन्थकार और हिन्दी

के कवि इसी भाँति हो गये हैं जिनके ग्रन्थों के सामने दुनिया के अन्य अनेक ग्रन्थ फीके हैं। कबीर, गुरुनानक, तुलसी और सूर इन चार महात्माओं के ग्रन्थों में जो भाव भरे हैं उनके समान पवित्र और जातीय साहित्यिक भाव बहुत कम भाषाओं में मिलेंगे।

जिस देश की जो भाषा है उसी भाषा में वास्तव में उस देश के न्याय, कानून, राजकाज, कौंसिल इत्यादि का कार्य होना चाहिये। हमारे देश में अभी ऐसा नहीं हो रहा है। हमारे यहाँ परिस्थिति बिल्कुल इससे बिपरीत है। जिस भाषा का हमारे भाइयों, को कुछ भी परिचय नहीं है, उस भाषा में हमारे यहाँ के सब राज-काज होते हैं। हमारे देश के भाइयों के मरने-जीने का न्याय हो, पर वह हो दूसरी भाषा में, यह कैसे आश्चर्य की बात है। वास्तव में न्याय उस भाषा में होना चाहिये जिसका एक-एक शब्द उसकी समझ में आता हो, जिसका कि न्याय हो रहा है। इसके लिये हमें प्रयत्न करना चाहिये। विश्वास है कि सफलता होगी।

अब उच्चारण को लीजिए। हम अपनी भाषा का उच्चारण जितनी शुद्ध और सरल रीति से कर सकते हैं उतनी किसी विदेशी भाषा का नहीं कर सकते। अपनी भाषा की गुरु पहले माता ही है। इसके बाद भाई, बहन, पिता, हाट-बाट-बाजार, मुहल्ले वाले सब उस भाषा के सिखलाने वाले प्रायः एक प्रकार के गुरु ही हैं। जहाँ आप जाइए सब उस भाषा को समझते हैं।

किन्तु विदेशी भाषा न हमारे भाई ही जानते हैं और न बहनें ही जानती हैं। बहने अब कहीं थोड़ी-थोड़ी पढ़ने लगी हैं। किन्तु सफर में, मेलों में, तीर्थयात्रा में सब जगह देशी भाषा से ही काम पड़ता है। विदेशी भाषा सीखने के लिए विदेश से गुरु बुलाओ, उनको बहुत-सा वेतन दो, फिर भी अभीष्ट सिद्धि नहीं होती। खर्च अधिक लगता है फल-अच्छा नहीं होता।

साहित्य और देश की उन्नति अपने देश की भाषा ही द्वारा हो सकती है। हाँ, यह सच है कि अंग्रेजी का भण्डार बहुत बड़ा है। उसमें राजनीतिक भाव बहुत अच्छे हैं। आधुनिक विज्ञान का परिचय भी हमको उसी भाषा के द्वारा हुआ है। अब यह लाभ देशव्यापी करना है। यह कार्य देशी भाषा के द्वारा हो सकता है। बिजली की रोशनी से रात्रि का अन्धकार दूर हो सकता है। किन्तु सूर्य का काम बिजली नहीं कर सकती। इसी भाँति विदेशी भाषा के द्वारा सूर्य का प्रकाश नहीं कर सकते, इसीलिए देशी भाषा के साहित्य की उन्नति करनी चाहिए। अंग्रेजी द्वारा जो बात जानी गई है उसे अब देशी भाषा के द्वारा सारे देश में फैलाना चाहिये। सार्वजनिक रूप से यह कार्य हिन्दी ही के द्वारा हो सकता है। इसलिए इसकी उन्नति आवश्यक है। हम यह नहीं कहते कि देश भर में एक ही भाषा रहे, अन्य प्रांतीय भाषायें न रहें। नहीं, सब प्रान्तों में अपने-अपने प्रान्त की भाषा की उन्नति हो। सभी भाषायें शोभा के साथ प्रौढ़ और दृढ़ बनें। अभी तक जो कार्य अंग्रेजी

के द्वारा होता आया है, वह अब हिन्दी के द्वारा होना चाहिए। कांग्रेस के समान राष्ट्रीय सभाओं में विदेशी भाषाओं का उपयोग होने से सर्वसाधारण जनता अपने नेताओं का भाव नहीं समझ सकती।

राजनीति के सम्बन्ध से तो एक भाषा का होना बहुत ही आवश्यक है। सम्पूर्ण देश के शासन का केन्द्र एक है। जब प्रजा के अधीन राज्य होगा तब हमको ऐसी ही भाषा के द्वारा राज-काज करना होगा, जिसको कि बहुतजन समान समझता हो। मुट्ठी भर आदमी जिस भाषा को समझते हों उसके द्वारा प्रजा का कार्य नहीं किया जा सकता। हिन्दी को ही इसके लिए सर्वथा उपयुक्त मानना पड़ेगा। एक राष्ट्रीय भाषा वह होनी चाहिए जिसको हिन्दू, मुसलमान, इसाई सब मानें। मैं निवेदन करूँगा कि मुसलमान भाइयों को हिन्दी को मानना कोई नई बात नहीं है। प्राचीन काल से ही मुसलमान कवि हिन्दी में कविता करते आये हैं। सम्राट् अकबर ने हिन्दी से प्रेम दिख-लाया है। वे स्वयं हिन्दी में बहुत अच्छी कविता करते थे। देखिये, उनका दोहा कैसा अच्छा है :—

जाको जस है जगत में, जगत सराहै जाहि।
ताको जीवन सफल है, कहत अकबर साहि॥

इसी भाँति रहीम कवि ने क्या ही अच्छी उपदेशप्रद कविता की है। उनका एक ही दोहा आपको सुनाता हूँ :—

महामना पं० मदन मोहनजी मालवीय का
१९४० में लिया गया चित्र।

जो गरीब सों हित करें, धनि रहीम वे लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग॥

मुबारक कवि भी बड़े प्रसिद्ध हो गये हैं। मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' लिखा है। इस भांति अनेक मुसलमान सज्जनों ने हिन्दी को अपनी मां की बोली समझकर उसकी सेवा की है। रसखान की कविता कैसी प्रेम भरी है। यह प्रत्येक सहृदय जान सकता है। देखिये कृष्ण के प्रेम में रंगकर उन्होंने कैसा कहा है—

मानुष होउं वहै रसखानि,
वसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जौ पसु होउं कहा बस मेरौ,
चरौं नित नन्द की धेनु मझारन॥
पाहन होउं वहै गिरि को,
जो धर्‌यो करछत्र पुरन्दर धारन॥
जौं खग होउं बसेरौ करौं,
उन कालिन्दि कूल कदम्ब की डारन॥

यह कोई धर्म से सम्बन्ध रखने वाली बात नहीं है, यह राष्ट्रीयता का सवाल है। देश भाषा का सवाल है। अकबर, रहीम, रसखान, मलिक मुहम्मद जायसी आदि मुसलमान भाइयों की भाँति इसाई मिशनरियोंने भी हिन्दी भाषा को बड़ा मानकरके उसकी सेवा की है। वर्तमान काल में प्रत्येक प्रान्त के विचारशील सज्जनों ने हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा के नाते अपनाया है।

अन्त में हम यही प्रार्थना करेंगे कि आप सब भाई-बहन राष्ट्र-भाषा के गौरव को मान कर अपनी-अपनी भाषा के साथ प्रत्येक बालक को हिन्दी का ज्ञान अवश्य करावें। कोई दिन आवेगा कि जिस भांति अंग्रेजी जगत-भाषा हो रही है, उसी भांति हिन्दी का भी सर्वाधिक प्रचार होगा। इसी बात का ध्यान दिलाने के लिये आज यह बम्बई का सम्मेलन हुआ है हमें विश्वास है कि सब भाई-बहनों की परस्पर सहायता से यह विटप बढ़कर फूले-फलेगा और देश को लाभ पहुँचावेगा।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

मालवीयजी की अमर कीर्त्ति हिन्दू विश्वविद्यालय है। यहाँ इसका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है जिससे पाठक इस से परिचित हो जाँय कि किस प्रकार मालवीय जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की थी। काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय आज दिन संसार का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय समझा जाता है। अतः इसके अस्तित्व पर सारे भारतवर्ष को अभिमान है, जैसा कि निम्नलिखित पद से प्रगट होता है।

हमारे देश का अभिमान, हिन्दू विश्वविद्यालय,
हमारी जात का है प्राण, हिन्दू विश्वविद्यालय।
सरलता विश्व-बंधुत्व, अपने धर्म में दृढ़ता।
सकल गुणशील की है खान, हिन्दू विश्वविद्यालय।
कला विज्ञान की शिक्षा, सनातन धर्म की रक्षा।
सुविधा धर्म का है मान, हिन्दू विश्वविद्यालय।
अनेकों कर्मवीरों के हृदय की भावना का फल।
हमारे मालवीय का प्राण हिन्दू विश्वविद्यालय।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना का इतिहास बड़ा मनोहर है। सन् १९०४ में महाराजाधिराज बनारस की अध्यक्षता में की गई सभा में विश्वविद्यालय के आन्दोलन का सर्वप्रथम सूत्रपात हुआ था। सन् १९०५ ई० में यह विचार एक

योजना के रूप में रखा गया था और ३१ दिसम्बर सन् १६०५ ई० को, जिस वर्ष राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन काशी में हुआ था, देश के मान्य व्यक्तियों की टाउनहाल में सभा हुई थी, जिसमें इस योजना पर विचार किया गया था। उस समय उसका समर्थन सभी सदस्यों ने किया था। कुछ समय तक यह आन्दोलन चला परन्तु कुछ कारणवश आन्दोलन की गति सन् १६१० ई० तक रुकी रही। योजना को ठीक रूप से कार्य रूप में परिणत करने से पहले बहुत सा प्रारम्भिक कार्य करना आवश्यक था। सन् १६११ में जब राजराजेश्वर वृटेन (भारत) सम्राट् ने भारत का दौरा किया तो विश्वविद्यालय की आवश्यकता तथा इसके उद्देश्य फिर से प्रकाशित किये गये। पहली योजना में इसकी आवश्यकता भली-भांति बतलाई गई थी, परन्तु फिर भी कुछ परिवर्तन आवश्यक थे। जब यह योजना सन् १६११ ई० में फिर से रखी गई तो जनता ने फिर से इसका समर्थन किया। बहुत से राजाओं तथा धनिकों ने सहायता देने का बचन दिया। पच्चीस लाख रुपयों का बचन मिल जाने पर भारत सरकार से प्रार्थना की गई और लार्ड हार्डिंग तथा सर हारकोर्ट वटलर की सहायता से सरकार ने हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करने का समर्थन किया। दाताओं की संख्या भी क्रमशः बढ़ने लगी। पहली अक्तूबर १६१५ तक जिस समय कि हिन्दू विश्वविद्यालय विधान स्वीकृत हुआ, पचास लाख रुपये इकट्ठे किये जा चुके थे। सन् १६१७ ई० में भारत सरकार ने इस विश्वविद्यालय के कार्य

चलाने की आज्ञा दी। इसी समय दो मील लम्बा तथा एक मील चौड़ा सुन्दर स्थान नगवा पर लगभग छः लाख रुपये में खरीद लिया गया।

इस विश्वविद्यालय का शिलान्यास श्री मान् हिज़ एक्सेलैन्सी माननीय चार्ल्स बैरन हार्डिंग भारतवर्ष के गवर्नर जनरल तथा वाइसराय द्वारा ४ फरवरी सन् १६१६ ई० को किया गया था। विश्वविद्यालय की योजना को कार्य रूप में परिणित करने का श्रेय देश भक्त विप्र मदन मोहन मालवीय को ही है। परमात्मा ने उन्हें इसी कार्य सम्पादन के लिये उत्पन्न किया था। उन्होंने भारत को जगाकर और उसमें वांगमय तेज का विधान कर भारत के शासकों को नम्र बनाकर इस कार्य को सफल बनाया।

इस पुण्य कार्य की पूर्ति में और भी कई महापुरुषों ने हाथ बटाया था। बीकानेर नरेश बीर महामना महाराज श्री गंगा सिंह बहादुर, कार्य कारिणी सभा के सम्मान वर्द्धक सभापति, दरभंगा नरेश श्री रामेश्वर सिंह जी मंत्री एवं कोषाध्यक्ष डाक्टर श्री सुन्दर लाल जी, सर श्री गुरुदास वैनर्जी, श्री आदित्य राय भट्टाचार्य जी, विदुषी श्रीमती एनी वेसेंट, डाक्टर राय विहारी घोष तथा अन्य विद्या एवं देश प्रेमी भगवत् दासों ने यथा शक्ति इसकी सेवा की थी।

हिन्दू विश्वविद्यालय की कथा कहने के लिय एक युग चाहिये और पढ़ने के लिये अमित सन्तोष। न हमारे पास इतना समय और शक्ति है न आपको इतना धैर्य। अतः यही

समझ लीजिए कि यह एक दीन ब्राह्मण की निरन्तर कल्पना की सजीव सृष्टि है। कल जो स्वप्न था वह आज आखों के सामने है।

विश्वविद्यालय में आज इतने कालेज, होस्टल तथा अन्य भव्य-भवन बने हुये हैं जिन्हें देखकर जो यहां आता है वह चकित होता है। मैं यहां मालवीय जी के प्रयत्नों का संक्षिप्त परिचय कराना आवश्यक समझता हूँ। मालवीय जी धन संग्रह के लिये लक्ष्मीपतियों के विशाल नगर कलकत्ते में जा पहुंचे। वहाँ पर उन्होंने अपना व्याख्यान देना प्रारम्भ किया। इस धवल ब्राह्मण की एक हाँक पर कलकत्ते की लक्ष्मी दोनों हाथों में सोने का कलश लेकर आई और जिस झोली में यह ब्राह्मण अपने देश की करुण कथा सुनाकर आंसू बरसा रहा था उसमें उसने सोना उडेलना शुरू किया। इन्हीं दिनों श्रीमती एनी वेसेंट के भी तीन व्याख्यान भारतीय विश्वशिद्यालय के सम्बन्ध में कलकत्ते में हुये। इसके बाद एक सार्वजनिक-सभा में हिन्दू विश्व-विद्यालय की घोषणा की गई। कलकत्ते में जो आर्थिक सहायता का बचन मिला था वह प्रगट किया गया और प्रायः पांच लाख का बचन मिला और बहुत सा रुपया नकद भी मिला। मालवीय जी ने हिन्दू विश्वविद्यालय की मथानी लेकर देश को मथना शुरू कर दिया। विश्वविद्यालय की दुन्दुभी बजाते हुये मालवीय जी और उनके साथी कलकत्ते से लाहौर पहुँच गये। बीस-पच्चीस लाख का बचन मिल चुका था।

हिन्दू विश्वविद्यालय का आन्दोलन ब्रह्मपुत्र की बाढ़ के समान समुद्र की ओर वेग से बह रहा था। उसके आगे का पथ रोकना असम्भव हो चुका था। श्री सुन्दरलाल जी ने मालवीय जी का साथ दिया।

अब मालवीय जी त्रिवेणी बन गये। हिन्दू विश्वविद्यालय पर्व बन गया। सारे देश ने जी खोलकर इस पर्व पर सोना लुटाया। जहाँ-जहाँ डेपुटेशन जाता था वहाँ-वहाँ कई स्टेशन पहले से ही स्वागत प्रारम्भ हो जाता था, रेलवे पटरियों पर पटाखे रख दिये जाते थे। गाड़ी पहुँचते-पहुँचते आवाजें दगने लगतीं। लोग चिल्ला उठते "हिन्दू धर्म की जय, मालवीय जी की जय।" हाथियों पर सवारियां निकलतीं, बड़े-बड़े विशाल जलूस निकलते वही-वही मालवीय जी हैं सफेद साफेवाले, वही जो मुस्कराकर हाथ जोड़े खड़े हैं। वह देखो महाराज दरभंगा हैं। पीछे वह देखो व्याख्यान वाचस्पति जी पगड़ी बांधे खड़े हैं। ये देशी साड़ी पहने अंग्रेजी औरत यही एनी वेसेंट हैं। लोग इन पुरुषों को कितनी उत्सुकता से देखते थे। पेड़ों पर चढ़कर, मकानों की छतों से, केवल इनके दर्शन के लिये लोग अपने प्राण संकट में डालकर भीड़ के धक्के खाते हुये भी उमड़ पड़ते थे।

मालवीय जी की जीभ सरस्वती बनी हुई थी। उनकी वाणी पर कितनी स्त्रियों ने अपने आभूषण न्यौछावर किये, कितने लोगों ने अपने दिन भर की कमाई लुटा दी। हिन्दू

और मुसलमान दोनों इस यज्ञ में भाग ले रहे थे। किसी शायर ने इन्हीं कारणों से कहा था...

'फकीरे कौम आये हैं, झोलियां भर दो'

इस प्रकार मालवीय जी के अतुल परिश्रम से आज विश्व-विद्यालय में दो करोड़ रुपये से अधिक मूल्य के भवन बनाये गये हैं।

विश्वविद्यालय के हाते में प्रवेश करने पर हमें सबसे पहले महिला कालेज तथा महिला छात्रावास दिखाई देता है। इस छात्रावास के भीतर कितना मनोरम उद्यान है। आज इसमें भारत के कोने-कोने से आई हुई प्रायः तीन सौ लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त करती हैं। दाईं ओर आयुर्वेदिक कालेज और सर सुन्दर लाल चिकित्सालय है। इसमें आयुर्वेद के साथ-साथ पाश्चात्य शल्यशास्त्र भी पढ़ाया जाता है। आगे चलने पर संस्कृत महा विद्यालय, सेन्ट्रल हिन्दू कालेज, साइन्स कालेज, कालेज आफ माइनिंग तथा मेटलार्जी, कालेज आफ टेकनालजी, खेती कालेज तथा इंजिनियरिंग कालेज के विशाल भवन दृष्टि गोचर होते हैं। इन कालेजों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के रहने के लिये रुइया छात्रावास, विरला छात्रा-वास ब्रोचा छात्रावास, न्यू होस्टल, मोरवी होस्टल, धनराज गिरि होस्टल, राजपूताना होस्टल, डे होस्टल तथा सरकारी होस्टल बने हुये हैं। आज दिन विश्वविद्यालय में लगभग दस हजार छात्र विद्या प्राप्त करते हैं; यहाँ के अध्यापकों तथा

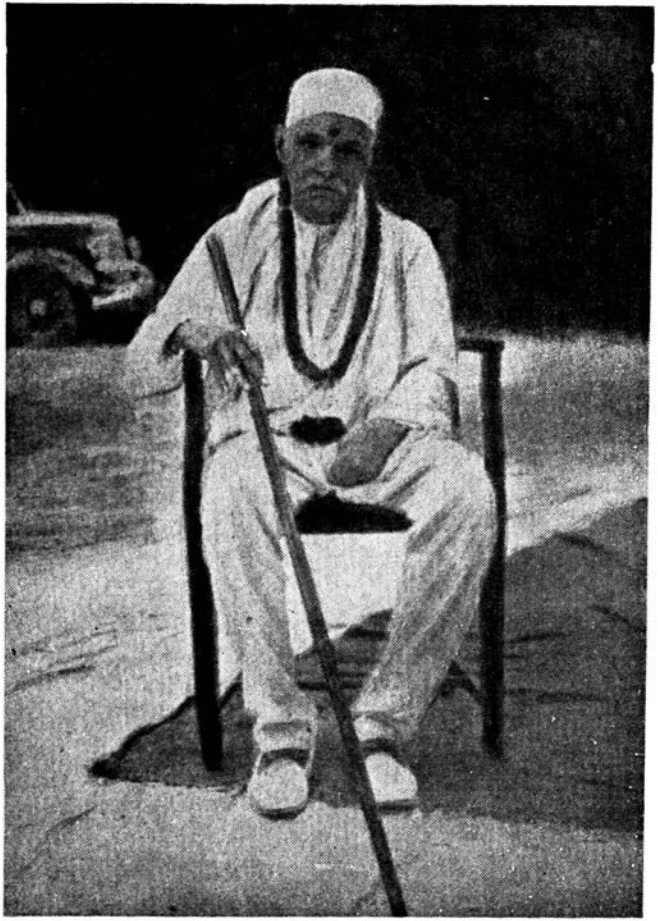

महामना पं० मदन मोहन मालवीयजी का वृद्धावस्था में लिया गया चित्र।

कर्मचारियों के रहने के लिये बंगले बने हुये हैं। लगभग एक सहस्र विद्वानों तथा अन्य कर्मचारियों की रोटी विश्व-विद्यालय द्वारा चलती है।

अन्त में विश्वविद्यालय की कुल गीत का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है जिससे विश्वविद्यालय के उद्देश्यों तथा कार्यों का दिग्दर्शन हो जाय।

मधुर मनोहर अतीव सुन्दर, यह सर्व विद्या की राजधानी।
यह तीन लोकों से न्यारी काशी, सुज्ञान धर्म और सत्य राशी।
बसी है गंगा के रम्य तट पर, यह सर्व विद्या की राजधानी।
नैय नहीं है ये ईंट पत्थर, है विश्वकर्मा का कार्य सुन्दर।
रचे हैं विद्या के भव्य मन्दिर, यह सर्व सृष्टि की राजधानी।
यहाँ की है यह पवित्र शिक्षा, कि सत्य पहले फिर आत्म रक्षा।
बिके हरिश्चन्द्र थे यहीं पर, यह सत्य शिक्षा की राजधानी।
यह वेद ईश्वर की सत्यवानी, बनें जिन्हें पढ़ के ब्रह्म ज्ञानी।
थे व्यास जी ने रचे यहीं पर, यह ब्रह्म विद्या की राजधानी।
वह मुक्ति पद को दिलानेवाले, सुधर्म पथ पर चलाने वाले।
यहीं फले-फूले बुद्ध शंकर, यह राज ऋषियों की राजधानी।
सुरम्य धारायें वरुणा-अस्सी, नहाये जिनमें कबीर तुलसी।
भला हो कविता का क्यों न आकर, यह सर्व विद्या की राजधानी।
विविध कला, अर्थ शास्त्र गायन, गणित, खनिज, औषधि रसायन।
प्रतीचि प्राची का मेल सुन्दर, यह सर्व विद्या की राजधानी।
है मालवी की यह देश भक्ति, यह उनका साहस यह उनकी शक्ति।
प्रकट हुई है नवीन होकर, यह कर्मवीरों की राजधानी।

मालवीय जी ने अपने जीवन का अधिकांश भाग विश्व-विद्यालय की सेवा में ही बिताया था। उप-कुलपति तथा कुलपति के पद पर मालवीय जी ने अपने जीवन के अन्तिम बीस वर्षों को व्यतीत किया था। जब उठने-बैठने से असमर्थ हो गए तो इन्होंने कुलपति का भार सर राधा कृष्णनन् को सौंप दिया था। फिर भी विश्वविद्यालय के प्रति अगाढ़ प्रेम के कारण अपने जीवन की अन्तिम घड़ी तक बराबर यहीं रहते रहे। काल चक्र बड़ा प्रबल है। वह सदा सबके जीवन में नितान्त परिवर्तन करता रहता है। तदनुसार क्रूर काल मालवी जी के प्राण पखेरु को ११ नवम्बर १९४६ ई० को लेकर उड़ गया। देश में हाहाकार मच गया। सभी ने इनके स्वर्गबास पर महान शोक प्रकट किया। वे आज भी अमर हैं। उनका प्रातःस्मर्णीय नाम भविष्य में आदर, सम्मान तथा गर्व के साथ भारत के कोने-कोने में निरन्तर गूँजता रहेगा।

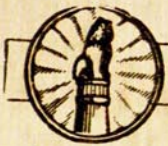
अशोक पुस्तक मंदिर